सत्यमेव जयते

109वां अंक | अवधि : छमाही
(अप्रैल, 2025 – सितंबर, 2025)

SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थ सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

तोशाली

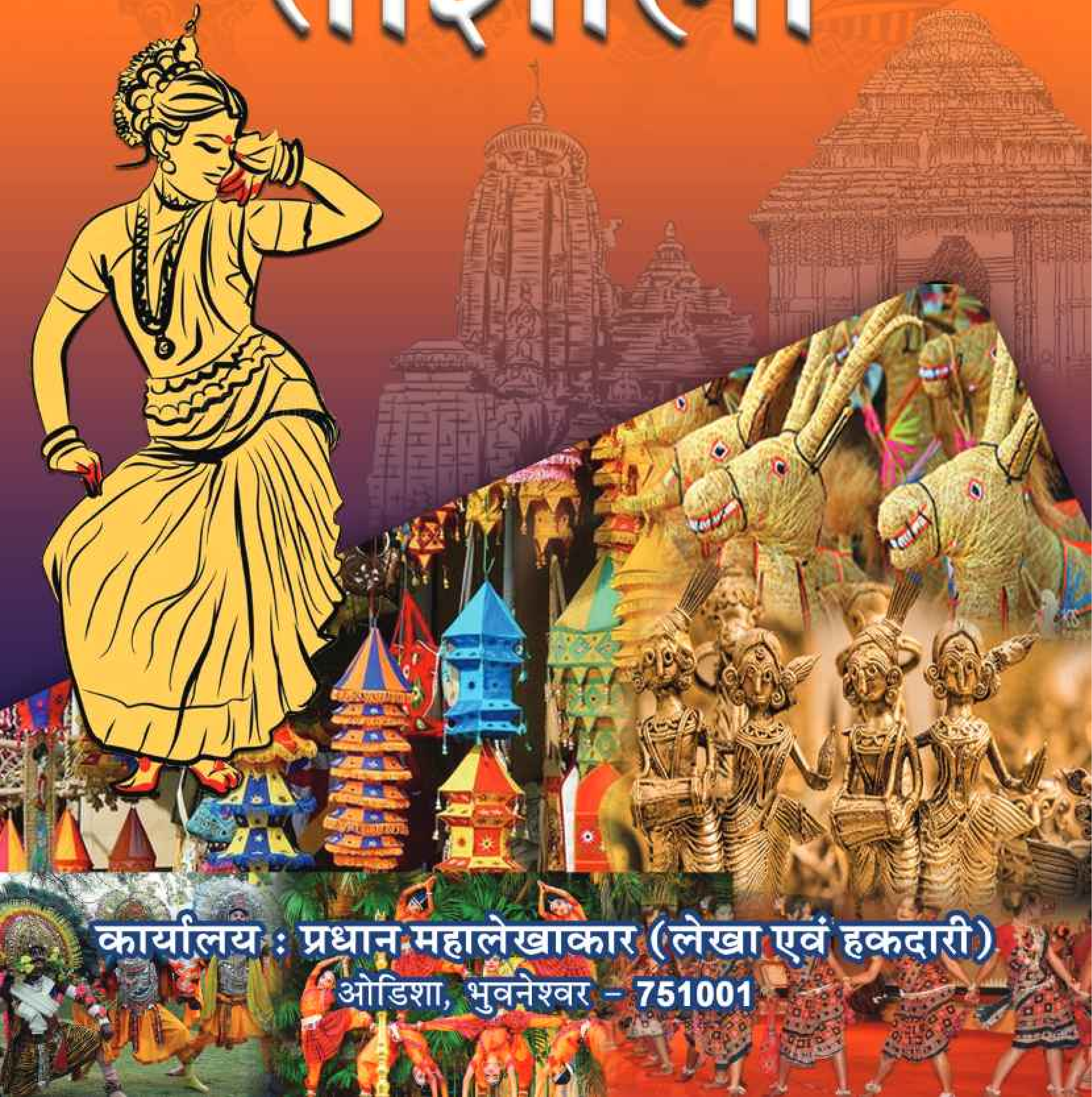

कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)
ओडिशा, भुवनेश्वर – 751001

दिनांक : 10 एवं 11 जुलाई 2025 को आयोजित वन लेखांकन पर क्षमता निर्माण कार्यक्रम

स्वतंत्रता दिवस के शुभ अवसर पर कार्यालय परिसर

सत्यमेव जयते

तोशाली

अंक – 108 (अप्रैल, 2025 – सितंबर, 2025) अवधि – छमाही

ओडिशा की कला एवं संस्कृति विशेषांक

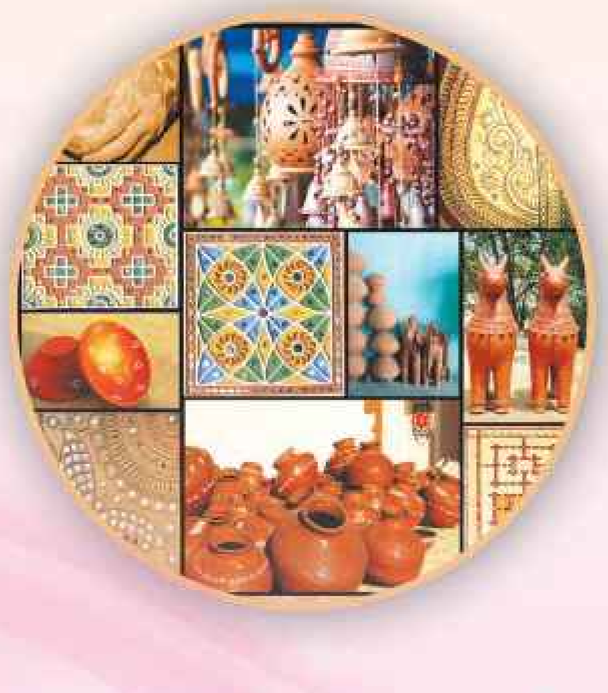

कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)
ओडिशा, भुवनेश्वर – 751001

पत्रिका परिवार

मुख्य संरक्षक
श्री डी. साहु
प्रधान महालेखाकार

संरक्षक
श्री मनोज एक्का
वरिष्ठ उप महालेखाकार (प्रशासन)

मार्गदर्शक
श्री विकास कुमार
उप महालेखाकार (लेखा एवं वीएलसी)

श्री संजय कुमार
उप महालेखाकार (निधि एवं पेंशन)

संपादक
सुश्री कीर्ति श्री
सहायक निदेशक (राजभाषा)

सहयोग
सुश्री रूपा कुमारी
वरिष्ठ अनुवादक
सुश्री सुनीता देवी
कनिष्ठ अनुवादक
श्री शिवानंद
कनिष्ठ अनुवादक
सुश्री अनिता दास
कनिष्ठ अनुवादक
श्री अजय कुमार साव
कनिष्ठ अनुवादक

ध्यातव्य : पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाएं रचनाकारों के व्यक्तिगत विचार व भावनाएं हैं, कार्यालय व संपादक मंडल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अमित शाह
गृह मंत्री एवं सहकारिता मंत्री
भारत सरकार

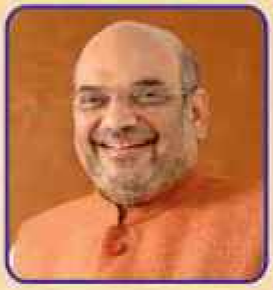

प्रिय देशवासियो !

आप सभी को हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ।

भारत मूलतः भाषा–प्रधान देश है। हमारी भाषाएँ सदियों से संस्कृति, इतिहास, परंपराओं, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने का सशक्त माध्यम रही हैं। हिमालय की ऊँचाइयों से लेकर दक्षिण के विशाल समुद्र तटों तक, मरुभूमि से लेकर बीहड़ जंगलों और गाँव की चौपालों तक, भाषाओं ने हर परिस्थिति में मनुष्य को संवाद और अभिव्यक्ति के माध्यम से संगठित रहने और एकजुट होकर आगे बढ़ने का मार्ग दिखाया है।

मिलकर चलो, मिलकर सोचो और मिलकर बोलो, यही हमारी भाषाई और सांस्कृतिक चेतना का मूल मंत्र रहा है।

भारत की भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही रही है कि उन्होंने हर वर्ग और समुदाय को अभिव्यक्ति का अवसर दिया। पूर्वोत्तर में बीहू का गान, तमिलनाडु में ओवियालू की आवाज, पंजाब में लोहड़ी के गीत, बिहार में विद्यापति की पदावली, बंगाल में बाउल संत के भजन, आदिम समाज में ढोल–मांदर की थाप पर करमा की गूँज, माताओं की लोरियाँ, किसानों का बारहमासा, कजरी गीत, भिखारी ठाकुर की 'बिदेशिया', इन सबने हमारी संस्कृति को जीवन्त और लोककल्याणकारी बनाया है।

मेरा स्पष्ट मानना है कि भारतीय भाषाएँ एक दूसरे की सहचर बनकर, एकता के सूत्र में बंधकर आगे बढ़ रही हैं। संत तिरुवल्लुवर को जितनी भावुकता से दक्षिण में गाया जाता है, उतनी ही रुचि से उत्तर में भी पढ़ा जाता है। कृष्णदेवराय जितने लोकप्रिय दक्षिण में हुए, उतने ही उत्तर में भी। सुब्रमण्यम भारती की राष्ट्रप्रेम से ओत–प्रोत रचनाएँ हर क्षेत्र के युवाओं में राष्ट्रप्रेम को प्रबल बनाती हैं। गोस्वामी तुलसीदास को हर एक देशवासी पूजता है, संत कबीर के दोहे तमिल, कन्नड़ और मलयालम अनुवादों में पाए जाते रहे हैं। सूरदास की पदावली दक्षिण भारत के मंदिरों और संगीत परंपरा में आज भी प्रचलित है। श्रीमंत शंकरदेव, महापुरुष माधवदेव को हर एक वैष्णव जानता है। और, भूपेन हजारिका को हरियाणा का युवा भी गुनगुनाता है।

गुलामी के कठिन दौर में भी भारतीय भाषाएँ प्रतिरोध की आवाज बनीं और आज़ादी के आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने में भूमिका निभाई। हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने जनपदों की भाषाओं में, गाँव–देहात की भाषा में लोगों को आज़ादी के आंदोलन से जोड़ा। हिंदी के साथ ही सभी भारतीय भाषाओं के कवियों, साहित्यकारों और नाटककारों ने लोकभाषाओं, लोककथाओं, लोकगीतों और लोकनाटकों के माध्यम से हर आयु, वर्ग और समाज के भीतर स्वाधीनता के संकल्प को प्रबल बनाया। वन्दे मातरम् और जय हिंद जैसे नारे हमारी भाषाई चेतना से ही उपजे और स्वतंत्र भारत के स्वाभिमान के प्रतीक बने।

जब देश आजाद हुआ, तब हमारे संविधान निर्माताओं ने भाषाओं की क्षमता और महत्ता को देखते हुए

इस पर विस्तार से विचार–विमर्श किया और 14 सितम्बर 1949 को देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया। संविधान के अनुच्छेद 351 में यह दायित्व सौंपा गया कि हिंदी का प्रचार–प्रसार हो और वह भारत की सामासिक संस्कृति का प्रभावी माध्यम बने।

पिछले एक दशक में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में भारतीय भाषाओं और संस्कृति के पुनर्जागरण का एक स्वर्णिम कालखंड आया है। चाहे संयुक्त राष्ट्रसंघ का मंच हो, जी–20 का सम्मेलन या SCO में संबोधन, मोदी जी ने हिंदी और भारतीय भाषाओं में संवाद कर भारतीय भाषाओं का स्वाभिमान बढ़ाया है।

मोदी जी ने आजादी के अमृत काल में गुलामी के प्रतीकों से देश को मुक्त करने के जो पंच प्रण लिए थे, उसमें भाषाओं की बड़ी भूमिका है। हमें अपनी संवाद और आपसी संपर्क भाषा के रूप में भारतीय भाषा को अपनाना चाहिए, न कि किसी विदेशी भाषा को। तभी हम गुलामी की मानसिकता से पूरी तरह मुक्त हो पाएँगे।

राजभाषा हिंदी ने 76 गौरवशाली वर्ष पूरे किए हैं। राजभाषा विभाग ने अपनी स्थापना के स्वर्णिम 50 वर्ष पूर्ण कर हिंदी को जनभाषा और जनचेतना की भाषा बनाने का अद्भुत कार्य किया है। 2014 के बाद से सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रयोग को निरंतर बढ़ावा दिया गया है। संसदीय राजभाषा समिति ने वर्ष 1976 में अपनी स्थापना से लेकर 2014 तक माननीय राष्ट्रपति महोदया को प्रतिवेदन के 9 खंड प्रस्तुत किए थे, वहीं 2019 से अब तक 3 खंड प्रस्तुत किए जा चुके हैं। 13–14 नवम्बर 2021 को वाराणसी से प्रारंभ हुए अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलनों की परम्परा भी लगातार आगे बढ़ रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी राजभाषा विभाग ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। न्यूरल मशीन ट्रांसलेशन पर आधारित 'कंठस्थ 2.0' में आज 5 करोड़ से अधिक वाक्यों का ग्लोबल डाटाबेस उपलब्ध है। 'लीला राजभाषा' और 'लीला प्रवाह' जैसे शिक्षण पैकेजों के माध्यम से 14 भारतीय भाषाओं में हिंदी सीखने की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। वर्ष 2022 में शुरू हुआ 'हिंदी शब्द सिंधु' अब तक लगभग 7 लाख शब्दों से समृद्ध हो चुका है।

2024 में हिंदी दिवस पर 'भारतीय भाषा अनुभाग' की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के बीच सहज अनुवाद सुनिश्चित करना है। हमारा लक्ष्य यह है कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ केवल संवाद का माध्यम न रहकर तकनीक, विज्ञान, न्याय, शिक्षा और प्रशासन की धुरी बनें। डिजिटल इंडिया, ई–गवर्नेंस, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन लर्निंग के इस युग में हम भारतीय भाषाओं को भविष्य के लिए सक्षम, प्रासंगिक और वैश्विक तकनीकी प्रतिस्पर्धा में भारत को अग्रणी बनाने वाली शक्ति के रूप में विकसित कर रहे हैं।

मित्रों, भाषा सावन की उस बूँद की तरह है, जो मन के दुःख और अवसाद को धोकर नई ऊर्जा और जीवन शक्ति देती है। बच्चों की कल्पना से गढ़ी गई अनोखी कहानियों से लेकर दादी–नानी की लोरियों और किस्सों तक, भारतीय भाषाओं ने हमेशा समाज को जिजीविषा और आत्मबल का मंत्र दिया है।

मिथिला के कवि विद्यापति जी ने ठीक ही कहा है:
"देसिल बयना सब जन मिट्ठा।"
अर्थात् अपनी भाषा सबसे मधुर होती है।

आइए, इस हिंदी दिवस पर हम हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं का सम्मान करने और उन्हें साथ लेकर आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी तथा विकसित भारत की दिशा में आगे बढ़ने का संकल्प लें।

आप सभी को एक बार फिर से हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ।

वंदे मातरम्।

नई दिल्ली
14 सितंबर, 2025

(अमित शाह)

मुख्य संरक्षक की कलम से...

अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका तोशाली का 109वां अंक पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है। "तोशाली" के इस अंक की विषयवस्तु है – ओडिशा की कला एवं संस्कृति। इस विषयवस्तु के चयन का एकमात्र उद्देश्य राजभाषा हिंदी को ओडिशा की सभ्यता एवं सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ना है। यह पत्रिका हिंदी के प्रचार– प्रसार के साथ–साथ ज्ञान, विचार और संस्कृति के समावेशी मंच के रूप में कार्य करती है।

ओडिशा की सभ्यता अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है, जो भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक विविधता में एक अनूठा स्थान रखती है। यहाँ की कला, स्थापत्य, संगीत, नृत्य और हस्तशिल्प में गहन आध्यात्मिकता और पारंपरिक ज्ञान का अद्भुत मेल दिखाई देता है। जगन्नाथ मंदिर जैसी विश्वप्रसिद्ध धरोहरें, पुरी के रंग–बिरंगे त्योहार और ओडिसी नृत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति ओडिशा की सांस्कृतिक गहराई को दर्शाती हैं। इस राज्य की लोककथाएँ, हस्तकला एवं जनजीवन की विविधता इसे एक जीवंत सांस्कृतिक केंद्र बनाती है। इस पत्रिका का प्रकाशन हिंदी भाषा को प्रोत्साहित करने और इसे व्यवहारिक कार्यक्षेत्र में स्थापित करने के उद्देश्य से होता है।

इस अंक के सफल प्रकाशन में योगदान देने वाले सभी रचनाकार और संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं। आशा करता हूँ कि यह अंक पाठकों को न केवल जानकारी देगा, बल्कि उनकी सांस्कृतिक समझ को भी समृद्ध करेगा। हिंदी भाषा के विकास एवं संरक्षण के लिए हमारा यह प्रयास निरंतर जारी रहेगा।

"तोशाली" पत्रिका के स्वर्णिम भविष्य के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(डी. साहु)

प्रधान महालेखाकार

संरक्षक की कलम से...

"तोशाली" के 109वें अंक के प्रकाशन पर मैं सभी पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ। इस वर्ष अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका "तोशाली" के 109वें अंक की विषयवस्तु है – ओडिशा की कला एवं संस्कृति। यह अंक हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ ही हमारी परंपराओं को समझने और सराहने का एक अवसर भी प्रदान करता है।

हमारे कार्यालयों में हिंदी भाषा को सहर्ष अपनाने और बढ़ावा देने की दिशा में "तोशाली" पत्रिका कार्मिकों की रूचि को बाँध रखती है। यह राजभाषा नीति के सुचारू कार्यान्वयन हेतु कार्मिकों के लिए एक सहयोगपूर्ण सकारात्मक वातावरण भी तैयार करती है। "तोशाली" के माध्यम से हम हिंदी भाषा को न केवल एक संचार के साधन के रूप में विकसित कर रहे हैं बल्कि इसे सृजनात्मकता, ज्ञान और संस्कृति के विस्तार का भी माध्यम बना रहे हैं। ओडिशा की कला, नृत्य, संगीत, हस्तशिल्प और लोक परंपराएँ अत्यंत जीवंत और प्रेरणादायक हैं। इस अंक में इन पहलुओं को समर्पित आलेख और चित्रण हमारी सांस्कृतिक विविधता को समेटे हुए हिंदी भाषा के माध्यम से समृद्ध होते हैं।

मैं इस पत्रिका के प्रकाशन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े संपादक मंडल और सभी रचनाकारों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि यह अंक हमारे समस्त पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं रूचिकर सिद्ध होगा।

(मनोज एक्का)
वरिष्ठ उपमहालेखाकार (प्रशा.)

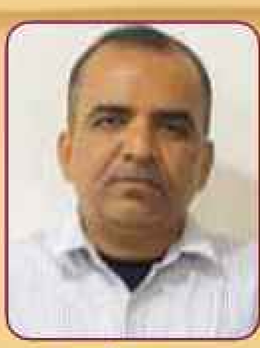

संदेश...

राजभाषा हिंदी आज वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर चुकी है। हिंदी केवल एक भाषा नहीं बल्कि भारतीयता की आत्मा, हमारी सांस्कृतिक चेतना तथा प्रशासनिक सशक्तिकरण का आधार है। इसके निरंतर विकास और विस्तार में विभिन्न संस्थानों की भूमिका अत्यंत सराहनीय रही है। इसी क्रम में, हमारे कार्यालय द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिका "तोशाली" का 109वाँ अंक "ओडिशा की कला एवं संस्कृति" विषय पर केंद्रित किया जाना अत्यंत समीचीन एवं सराहनीय पहल है।

ओडिशा की कला एवं संस्कृति भारतीय विरासत का एक गौरवशाली अध्याय है। यहाँ की स्थापत्यकला, लोक नृत्य, शिल्प परंपराएँ, संगीत और जनजीवन न केवल इस क्षेत्र की सांस्कृतिक समृद्धि को अभिव्यक्त करते हैं बल्कि भारत की विविधता में निहित एकता को भी उजागर करते हैं। यह अंक नि:संदेह, पाठकों को ओडिशा की सांस्कृतिक भूमि की आत्मा से साक्षात्कार कराएगा और हिंदी भाषा के माध्यम से इस क्षेत्र की गौरवमयी परंपराओं को एक व्यापक मंच प्रदान करेगा।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने इस रचनात्मक उपक्रम में उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और सांस्कृतिक जागरुकता के क्षेत्र में एक सशक्त योगदान प्रस्तुत किया है। मैं इस उत्कृष्ट प्रयास हेतु संपादक मंडल सहित समस्त सहयोगी कार्मिकों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ और अपेक्षा करता हूँ कि "तोशाली" भविष्य में भी इसी उत्साह एवं गुणवत्ता के साथ राजभाषा हिंदी एवं भारतीय संस्कृति की सेवा करती रहेगी।

(संजय कुमार)
उप महालेखाकार (निधि एवं पेंशन)

संपादकीय...

राजभाषा हिंदी आज केवल एक संवैधानिक प्रावधान भर नहीं बल्कि राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम बन चुकी है। तकनीकी और वैश्विक परिवर्तनों के इस युग में हिंदी ने अपनी सहजता, भावप्रवणता और व्यावहारिकता के बल पर एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। यह हमारे लिए अत्यंत गौरव का विषय है कि हम उस ऐतिहासिक पड़ाव पर हैं, जब राजभाषा विभाग अपनी स्वर्ण जयंती – पचास वर्षों की प्रतिबद्ध सेवा, भाषा नीति और नवाचार की यात्रा को सफलतापूर्वक पूर्ण कर रहा है।

उसी प्रेरणा को आत्मसात करते हुए हमारे कार्यालय की राजभाषा हिंदी पत्रिका "तोशाली" का 109वाँ अंक "ओडिशा की कला एवं संस्कृति" को केंद्र में रखकर एक समग्र सांस्कृतिक चित्र उकेरने का प्रयास करता है। ओडिशा की स्थापत्य परंपराएँ, लोककला, संगीत, शिल्प, हस्तकला इत्यादि न केवल इस क्षेत्र की पहचान हैं बल्कि भारत की विविधताओं को एक सूत्र में पिरोने वाले सांस्कृतिक धागे भी हैं। हिंदी भाषा के माध्यम से इन रंगों और ध्वनियों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत करना हमारी सांस्कृतिक एकता को और भी सुदृढ़ करता है।

यह विशेषांक कार्यालय के उन अधिकारियों एवं कर्मचारियों की रचनात्मक सहभागिता का परिणाम है, जिन्होंने हिंदी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को केवल कार्यात्मक दायित्व तक सीमित न रखते हुए उसे एक रचनात्मक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के रूप में निभाया है। पत्रिका के सफल प्रकाशन पर मैं मार्गदर्शक मंडल एवं सभी रचनाकारों का हार्दिक धन्यवाद करती हूँ।

पत्रिका का यह अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए यह आशा करती हूँ कि यह न केवल ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायक सिद्ध होगा बल्कि ओडिशा की सांस्कृतिक गहराइयों से परिचय कराते हुए हिंदी भाषा की भाव-संप्रेषण क्षमता को भी और अधिक समीपता से अनुभव कराने में सहायक होगा। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस विशेषांक के अध्ययन उपरांत अपने बहुमूल्य विचार, सुझाव एवं प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत कराएँताकि आगामी अंकों को और भी अधिक गुणवत्तापूर्ण एवं समसामयिक बनाया जा सके।

कीर्ति

(कीर्ति श्री)

सहायक निदेशक (राजभाषा)

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

(सदैव ऊर्जावान; निरंतर प्रयासरत)

राजभाषा प्रतिज्ञा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 और 351 तथा राजभाषा संकल्प 1968 के आलोक में हम केंद्र सरकार के कार्मिक यह प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने उदाहरणमय नेतृत्व और निरंतर निगरानी से; अपनी प्रतिबद्धता और प्रयासों से प्रशिक्षण और प्राइज़ से अपने साथियों में राजभाषा प्रेम की ज्योति जलाये रखेंगे, उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करेंगे; अपने अधीनस्थ के हितों का ध्यान रखते हुए; अपने प्रबंधन को और अधिक कुशल और प्रभावशाली बनाते हुए राजभाषा-हिंदी का प्रयोग, प्रचार और प्रसार बढ़ाएंगे हम राजभाषा के संवर्द्धन के प्रति सदैव ऊर्जावान और निरंतर प्रयासरत रहेंगे।

जय राजभाषा! जय हिंद !

आपके पत्र...

कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा), बिहार
वीरचन्द पटेल मार्ग, पटना - 800 001

महोदया,

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका "**तोशाली**" की ई-प्रति प्राप्त हुई। पत्रिका का यह अंक भेजने हेतु आपका हार्दिक आभार। भेजी गई पत्रिका में संकलित सभी रचनाएं ज्ञानवर्धक एवं विस्तृत हैं तथा पत्रिका के विषयवस्तु "ओडिशा के मंदिर एवं स्थापत्यकला" के साथ न्याय करती है। श्री विकास कुमार, उप महालेखाकार महोदय का आलेख "समृद्ध भारतीय विरासत के प्रतीक: ओडिशा के मंदिर एक परिचय", श्री संजय कुमार, उप महालेखाकार महोदय का आलेख "कोणार्क के सूर्य मंदिर", श्री आलोक कुमार मौर्य जी की रचना "ओडिशा के मंदिरों की स्थापत्यकला में बौद्ध, जैन और जनजातीय प्रभाव" तथा चार ओराम जी की "आदिवासियों की परंपराएँ" नामक रचनाओं ने ओडिशा के मंदिरों की विविधता के मानो साक्षात दर्शन करा दिए हैं। महेंद्र कुमार शतपथी जी की हिंदी में अनुदित रचना "कोणार्क का जन्म" तथा "पखाल दिवस : ओडिशा की संस्कृति को समर्पित एक विशेष दिन" प्रभावपरक और रूचिकर है।

अंत में, पत्रिका के सफल संपादन हेतु संपादक मंडल को बधाई तथा पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएं।

- सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय : महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी),
केरल, तिरुवनंतपुरम - 695001

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय की अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका "**तोशाली**" के 108वें अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई, इसके लिए धन्यवाद। पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाएँ खासकर सुश्री शुभश्री पात्रो की कविता "पुरी : जगन्नाथ का निवास", सुश्री रुपा कुमारी का लेख "शैव-वैष्णव प्रतीकात्मक मंदिर : लिंगराज", श्री शुभम पात्रो की कविता "ओडिशा : मंदिरों का घर", श्री चार ओराम का लेख "आदिवासियों की परंपराएँ", श्री दीपक यादव का लेख "दिव्य अनुभूति", श्री अभिषेक कुमार का लेख "ओड़िशा का मन : मंदिर", सुश्री सुनीता देवी का लेख "इस्कॉन मंदिर : भुवनेश्वर" और "पखाल दिवस : ओडिशा की संस्कृति को समर्पित एक विशेष दिन" आदि रोचक, ज्ञानवर्धक एवं प्रशंसनीय हैं।

इस पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी रचनाकार एवं संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं। पत्रिका "**तोशाली**" की उत्तरोत्तर प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

- सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय:प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा),
पंजाब, चंडीगढ़ - 160017

महोदया,

आपके कार्यालय से प्रकाशित "**तोशाली**" पत्रिका के 108वें अंक की प्रति प्राप्त हुई। पत्रिका प्रेषण हेतु धन्यवाद। इस पत्रिका में सम्मिलित सभी रचनाएँ सुपाठ्य, बोधगम्य तथा उच्चकोटि की हैं विशेषकर श्री विकास कुमार की "समृद्ध भारतीय विरासत के प्रतीक : ओडिशा के मंदिर एक परिचय", श्री महेंद्र कुमार शतपथी की "कोणार्क का जन्म", श्री दीपक यादव की "दिव्य अनुभूति" एवं श्री शिवानंद की "जगन्नाथ, पुरी जी के दर्शन" आदि रचनाएँ अत्यंत मनोहर हैं। पत्रिका की साज-सज्जा एवं विषयवस्तु का सुंदर प्रस्तुतिकरण अत्यंत प्रशंसनीय है। राजभाषा हिंदी की प्रगति की दिशा में पत्रिका का यह अंक एक सराहनीय प्रयास है।

पत्रिका के रचनाकारों एवं संपादक मंडल को सफल संपादन तथा प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई। पत्रिका के निरंतर उज्ज्वल भविष्य हेतु शुभकामनाएं।

-सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय : महालेखाकार (लेखापरीक्षा-II),
महाराष्ट्र, नागपुर - 440001

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय की हिंदी पत्रिका "**तोशाली**" के 108वें संस्करण की ई-प्रति प्राप्त हुई, सहर्ष धन्यवाद। पत्रिका में समाविष्ट सभी लेख, कविताएं, उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्धक हैं। विशेषकर श्री संजय कुमार, उप महालेखाकार का लेख "कोणार्क सूर्य मंदिर, सुश्री रुपा कुमारी, वरिष्ठ अनुवादक का लेख "शैव-वैष्णव प्रतीकात्मक मंदिर: लिंगराज", श्री अभिषेक कुमार, स.ले.अ का लेख "ओड़िशा का मन: मंदिर", श्री प्रज्ज्वल उपाध्याय, स.ले.अ का लेख "एकाम्र क्षेत्र के मंदिर - स्थापत्य एवं भक्ति का संगम", आदि रचनाएँ उल्लेखनीय एवं सराहनीय हैं।

पत्रिका का मुखपृष्ठ अत्यंत आकर्षक है। पत्रिका के रचनाकारों एवं संपादक मंडल को सफल संपादन तथा प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई एवं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए हमारे कार्यालय की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ ।

- सहायक निदेशक (राजभाषा)

आपके पत्र...

कार्यालय : महालेखाकार (लेखा व हकदारी),

पंजाब एवं यू.टी. चंडीगढ़ - 160017

महोदय/ महोदया,

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका **"तोशाली"** के 108वें अंक के अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाएं रुचिकर, भावयुक्त एवं उद्देश्यपूर्ण हैं। पत्रिका का आवरण पृष्ठ अति मनोहर एवं आकर्षक है। कार्यालयीन गतिविधियों के छायाचित्र भी अति मनमोहक हैं।

पत्रिका में श्री संजय कुमार, उप महालेखाकार, की रचना "कोणार्क सूर्य मंदिर", श्रीमती शांतिलता सेठी, सहायक पर्यवेक्षक की रचना "गुप्तेश्वर महादेव" तथा दीपक यादव की रचना "दिव्य अनुभूति" विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

पत्रिका को सुरुचिपूर्ण एवं उपयोगी बनाने हेतु संपादकीय परिवार ने पूर्ण प्रयास किए है। पत्रिका के सभी रचनाकारों एवं संपादक मंडल को पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए बधाई एवं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएं।

यह पत्र उपमहालेखाकार (प्रशा.) महोदया के अनुमोदन से जारी है।

- सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय : महालेखाकार (लेखा व हकदारी),

जम्मू एवं कश्मीर, श्रीनगर

महोदया,

आपके कार्यालय की हिंदी पत्रिका **"तोशाली"** के 108वें ई-अंक की प्राप्ति हुई है। सादर धन्यवाद। पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई। राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु यह एक सराहनीय प्रयास है।

पत्रिका में संकलित रचनाएं जैसे श्री विकास कुमार, उप महालेखाकार का लेख "समृद्ध भारतीय विरासत के प्रतीक: ओडिशा के मंदिर -एक परिचय", श्री संजय कुमार, उप महालेखाकार का "कोणार्क सूर्य मंदिर", श्री प्रज्ज्वल उपाध्याय, सहायक लेखा अधिकारी का "एकाम्र क्षेत्र के मंदिर: स्थापत्य एवं भक्ति का संगम", श्री चार ओराम, वरिष्ठ लेखा अधिकारी का "आदिवासियों की परंपराएँ", श्री शिवानंद, कनिष्ठ अनुवादक का "जगन्नाथ, पुरी जी के दर्शन" तथा श्री अभिषेक कुमार, सहायक लेखा अधिकारी का लेख "ओडिशा का मन: मंदिर" अत्यंत रोचक व ज्ञानवर्धक हैं। पत्रिका की साज- सज्जा व मुद्रण भी अति उत्तम है। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए हमारी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

यह पत्र सक्षम अधिकारी के अनुमोदन से जारी किया जा रहा है।

-सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय : महानिदेशक लेखापरीक्षा

(केंद्रीय व्यय), ऑडिट भवन,

इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली - 110002

महोदय,

आपके कार्यालय के ई-मेल दिनांक 29.05.2025 के द्वारा आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित राजभाषा हिंदी पत्रिका **"तोशाली"** के 108 वें अंक की प्रति सधन्यवाद प्राप्त हुई। पत्रिका में समाविष्ट सभी रचनाएँ उच्चस्तरीय, ज्ञानवर्धक एवं प्रशंसनीय हैं। पत्रिका में समाविष्ट ओडिशा का भव्य मंदिर वहाँ की परंपरा से परिचित कराता है, श्री कुमार भास्कर का "ओडिशा राज्य के मंदिर और उनकी वास्तुकला", श्री उमाकांत महासुआर का "भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर और अनन्त वासुदेव मंदिर", श्री यशराज मिश्रा का "परशुरामेश्वर मंदिर - वास्तुकला का एक उत्कृष्ट नमूना" एवं श्री अजय कुमार साव का "गुंडिया मंदिर: आस्था का पवित्र केंद्र" बहुत ही ज्ञानवर्धक लेख है।

इसके अतिरिक्त सुश्री शुभश्री पात्रो की "पुरी: जगन्नाथ का निवास" कविता पठनीय हैं।

पत्रिका के श्रेष्ठ संकलन हेतु संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं। पत्रिका के उज्जवल भविष्य हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ।

- सहायक निदेशक (राजभाषा)

कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखा व हकदारी),

हिमाचल प्रदेश, शिमला - 171 003

महोदय/ महोदया,

उपरोक्त विषय पर आपके कार्यालय द्वारा प्रेषित अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका **"तोशाली"** के 108वें अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई है जिसमें प्रकाशित सभी रचनाएं उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्धक हैं। पत्रिका में समाविष्ट श्री मनोरंजन पाणिग्राही की रचना "माँ तारा तारिणी", श्री चार ओराम की रचना "आदिवासियों की परंपराएँ", सुश्री सुभश्री पात्रो की रचना "पुरी: जगन्नाथ का निवास" एवं श्री प्रज्ज्वल उपाध्याय की रचना "एकाम क्षेत्र के मंदिर: स्थापत्य एवं भक्ति का संगम" प्रशंसनीय है।

हिंदी भाषा की सृजनशीलता के उत्थान हेतु आपका प्रयास सराहनीय है जिसके लिए आपका राजभाषा परिवार बधाई का पात्र है। आशा है पत्रिका राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के मौलिक लेखन प्रतिभा को बढ़ावा देने में प्रेरक भूमिका निभाएगी। पत्रिका के उज्जवल भविष्य की शुभकामनाएँ।

-सहायक निदेशक (राजभाषा)

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	शीर्षक	रचनाकार	पृष्ठांक
1.	रांची से भुवनेश्वर	श्री विकास कुमार	13
2.	कहानी : ओडिशा की जीवंत कलाएं	श्री अजय कुमार साव	14
3.	ओडिशा में कठपुतली कला : छाया और कहानियों की एक जीवंत परंपरा	श्री यशराज मिश्रा	17
4.	ओडिशा की हस्त कलाएं : एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर	श्री गौरव यादव	20
5.	ओडिशा की कला एवं संस्कृति	श्री संजीव दुबे	22
6.	ओडिशा : एक झलक (कविता)	सुश्री सुनीता देवी	25
7.	ओडिशा : भारत की आत्मा	श्री मनीष कुमार	27
8.	पूरब का सूरज	श्री अभिषेक कुमार	29
9.	कला एवं संस्कृति की भूमि ओडिशा	सुश्री रूपा कुमारी	31
10.	ओडिशा: कला की भूमि, संस्कृति की कहानी	श्री विनोद कुमार	34
11.	ओडिशा की कला एवं संस्कृति : एक विविधतापूर्ण सांस्कृतिक धरोहर	सुश्री प्रिया कुमारी झा	37
12.	ओडिशा : कला, संस्कृति एवं परंपरा की धरती	सुश्री शुभश्री पात्रो	40
13.	ओडिशा की पट्टचित्र कला : एक सांस्कृतिक यात्रा	सुश्री अनिता दास	41
14.	महाप्रभु श्री जगन्नाथ स्वामी:ओडिशा की संस्कृति एवं विश्वव्यापी पहचान	श्री तुषार कांति साहा	44
15.	ओडिशा के लोक नृत्य	श्री रणवीर कुमार	46
16.	ओडिशा की कला एवं संस्कृति पर आदिवासी सभ्यता का प्रभाव	श्री शिवानंद	48
17.	ओडिया हिंदू विवाह : सादगी एवं परंपरा का उत्सव	श्री अमित कुमार मिश्रा	50
18.	ओडिशा की कला, संस्कृति एवं इतिहास	श्री मनीष चन्द्र बरनवाल	52
19.	ओडिशा की कला और संस्कृति	श्री रविन्द्र कुमार दास	54
20.	माँ	श्रीमती ममता	57

•••

रांची से भुवनेश्वर

श्री विकास कुमार
उप महालेखाकार (लेखा एवं वीएलसी)

"कालो न यातो वयमेव याता:" अर्थात् समय कहीं नहीं जाता प्रत्युत हम सभी एक-न-एक दिन स्वयं चले जाते हैं। महाकवि भर्तृहरि द्वारा रचित "वैराग्यशतकम्" के इस वाक्यांश में संसार की असारता, सांसारिक भोग-विलासों के प्रति तृष्णा भाव का सटीक चित्रण किया गया है। यह मेरे जेहन में बरसों से घर कर गया था।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

श्रीमद्भगवदगीता के इस लोकप्रिय श्लोक को आत्मसात करने की सर्वदा लालसा लिए मुझ जैसे तुच्छ जीव को स्वतंत्र भारत में अपनी आजीविका हेतु राँची शहर में पनाह लेनी पड़ी थी।

छोटानागपुर की उपत्यका में बसा राँची शहर एक खूबसूरत पहाड़ी पर्यटक स्थल है, जहाँ ब्रिटिश भारत में अभिजात्य वर्ग के लोग ग्रीष्म काल में प्रवास हेतु आते रहते थे। पूर्व में एकीकृत बिहार की ग्रीष्मकालीन राजधानी राँची अब "झारखंड" राज्य की राजधानी है। यहाँ यह भी सर्वविदित है कि 22 मार्च 1912 ई. में जब "बिहार एवं ओडिशा" प्रांत बंगाल प्रेसीडेंसी से अलग स्वतंत्र अस्तित्व में आया, तब सभी प्रशासनिक कार्य राँची से ही होते थे। कालांतर में "बिहार एवं ओडिशा" प्रांत की राजधानी बाँकीपुर (पटना) को बनाया गया। साथ ही "पुरी" को ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाना तय हुआ था। विश्व के अन्यतम समुद्र तट (गोल्डन बीच) पर अवस्थित "पुरी" नगर में तत्कालीन "बिहार एवं ओडिशा" प्रांत के गवर्नर गर्मियों के दिनों में निवास किया करते थे। यह सिलसिला वर्ष 1936 तक चला। 01 अप्रैल, 1936 को जब ओडिशा पृथक राज्य के रूप में अस्तित्व में आया तो "कटक" को राजधानी बनाया गया। महानदी एवं काठजोड़ी नदी के मध्य डेल्टा भूमि में बसा "कटक" एक प्राचीन शहर है, जो इस प्रांतीय भूमि पर अनेक राजा-शासकों के उत्थान-पतन का सदियों से गवाह रहा है।

ओडिशा के पृथक राज्य के रूप में अस्तित्व में आने के बाद न्यायिक व्यवस्था पटना उच्च न्यायालय (जो पूर्व में कलकत्ता उच्च न्यायालय से 26 फरवरी, 1916 से अलग अस्तित्व में आया) से संचालित होने लगी। यद्यपि पटना उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के तौर पर जिला एवं सत्र न्यायाधीश "कटक" में कार्य करने लगे। 01 अप्रैल, 1936 को ओडिशा अलग राज्य बना एवं पृथक उच्च न्यायालय की स्थापना की माँग उठी। तदन्तर, 26 जुलाई, 1948 को ओडिशा में उच्च न्यायालय का गठन हुआ।

यद्यपि "कटक" ओडिशा राज्य की राजधानी थी तथापि "पुरी" स्थित गवर्नर हाउस ग्रीष्मकालीन निवास के रूप में बना रहा। तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर लॉर्ड लिनलिथगो, लॉर्ड माउंटबेटन ने यहाँ रातें बितायी हैं।

15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिलने के बाद ओडिशा राज्य हेतु नई राजधानी की आवश्यकता महसूस हुई। इसी क्रम में 13 अप्रैल, 1948 को भुवनेश्वर को राजधानी के तौर पर बसाने की नींव तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा रखी गई। उन्होंने गर्वानुभूति के साथ ओडिशा की जनता के कल्याणार्थ भुवनेश्वर शहर को राजधानी के रूप में घोषणा की। 13 अप्रैल को प्रत्येक वर्ष भुवनेश्वर में स्थापना दिवस मनाया जाता है। इस अवसर पर पूरे शहर को दुल्हन की तरह सजाया-सँवारा जाता है। इसकी अपूर्व छटा देखने का सौभाग्य मुझे भी मिला जब मैं यहाँ पदस्थापित हुआ।

इस प्रकार, अनवरत गतिशील काल चक्र के वशीभूत मैं भी कार्यालयीन सफर में 1990 ई. में राँची शहर से 2024 में भुवनेश्वर शहर में आकर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। प्राचीन इतिहास, सभ्यता-संस्कृति को आज भी जीवंत बनाए रखे मंदिरों के शहर भुवनेश्वर की विकास यात्रा में खुद को सहभागी पाकर धन्य मानते हुए जगत के पालक श्री जगन्नाथ के प्रति अपार कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जयतु उत्कल जननी।।

कहानी : ओडिशा की जीवंत कलाएं

श्री अजय कुमार साव
कनिष्ठ अनुवादक

कभी-कभी ज़िंदगी की सबसे मार्मिक कहानियाँ न तो राजमहलों में जन्म लेती हैं, न ही सभागारों में। वे गढ़ी जाती हैं उन चूल्हों के धुएँ में, जिनके आगे एक माँ अपने बच्चों को आधी रोटी में पूरा सपना बाँटती है। ओडिशा के कंधमाल ज़िले के एक छोटे से गाँव बारूनिपाड़ा में भी एक ऐसी ही कथा ने आकार लिया, जहाँ मिट्टी और मेहनत ही पूँजी थी और कला ही जीवन का धर्म।

हरिप्रसाद साहू एक लकड़हारा था, जिसकी हथेली में दिन भर की मेहनत से ज्यादा जगह नहीं बचती थी और बिमला, उसकी पत्नी, जो खेतों में मज़दूरी कर दिन भर की थकान को आँचल में बाँध लाती थी। उनका घर, नहीं, उनकी झोपड़ी, बारिश में टपकती और गर्मी में तमतमाती थी लेकिन उसमें रहते थे चार बच्चे - कनक, दीप, झूमा और बबलू।

इन चारों बच्चों के हाथ में कला थी लेकिन पेट में भूख, पैरों में दरारें और आँखों में सवाल थे। कनक की उंगलियाँ मिट्टी को उस रूप में ढालती थीं, जिसे देखकर लगता था जैसे वह गढ़ नहीं रही, किसी मौन को आकार दे रही हो। वह पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर नदी की मिट्टी से छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाती, जिनमें कभी हल जोतता किसान होता, कभी झूमती युवती, कभी हाथ में कमंडल लिए साधु। दीप रंगों से खेलता नहीं था, उन्हें जीता था। उसके पास ब्रश नहीं था तो वह कभी खजूर की टहनी से, कभी उँगलियों से, तो कभी पुराने कपड़े के टुकड़े से रंग बिखेरता। उसकी बनाई दीवार चित्रकथाएँ गाँव की सूनी दीवारों को जीवन देती थीं। झूमा खेत में काम करते-करते अचानक नाचने लगती, उसके पाँव में छाले थे लेकिन चाल में लय थी। उसकी हरकतें देखकर कई बार बिमला नाराज़ हो जाती, "अभी नाच ही रही है तो शाम को भूख से रोना मत।" पर झूमा का जवाब होता, "जब नाचती हूँ, तो भूख भी भूल जाती हूँ।" वह ओडिशा की लोकनृत्य शैली "घुमुरा" और "सांभर" की लय को खेत के पानी में उतार देती थी। उसके नृत्य में जड़ नहीं, गति थी, गति में पीड़ा थी और उस पीड़ा में सौंदर्य। और बबलू? वह बाँसुरी को सीटी समझकर बजाना सीख गया था। उसके पास असली बाँसुरी नहीं थी तो वह सरकंडे काटकर अपना वाद्य खुद बनाता। उसकी तानें गायों को चरते-चरते ठिठका देतीं और कभी-कभी पास के मंदिर के पुजारी चुपचाप बैठकर सुनते। बबलू जब बाँसुरी बजाता तो उसमें ओडिशा के मंदिरों की गूंज, लोकगीतों की सादगी और गाँव की सुबह की नमी सब घुल जाती थी। इन बच्चों के लिए कला कोई शौक नहीं, साँस लेने का तरीका थी लेकिन दुनिया ने कभी उन्हें कलाकार नहीं कहा।

ग़रीबी इन बच्चों के जीवन में सिर्फ एक परिस्थिति नहीं थी बल्कि धूप की तरह लगातार जलाती हुई एक सतत उपस्थिति थी। भोजन अक्सर आधा होता लेकिन सपनों में कोई कमी नहीं थी। विद्यालय जाना चारों का हक़ था पर वहाँ का अनुभव एक सजा जैसा होता। शिक्षक कभी उनके गंदे कपड़ों को लेकर

तंज कसते तो कभी उन्हें आगे की पंक्ति में बैठने से रोकते। उनके सहपाठी उन्हें "मिट्टी वाले", "भिखारियों के बच्चे" इत्यादि कह कर बुलाते।

एक बार दीप ने विद्यालय की दीवार पर जगन्नाथ जी का चित्र बना दिया। अगले दिन प्रधानाध्यापक ने उसे डांटा और पूरी दीवार धुलवाई जबकि बाकियों की दीवारों पर बने अंग्रेज़ी कवियों के चित्रों की प्रशंसा की जाती थी। कनक को एक बार अपने बनाए मिट्टी के दीपक विद्यालय के मेले में दिखाने का अवसर मिला पर कुछ बच्चों ने उन्हें – "तू ये गंदगी क्यों लाई है?" कहकर मेले से पहले ही तोड़ दिया। झूमा विद्यालय के वार्षिक नृत्य में हिस्सा लेना चाहती थी पर उसके पास चमकदार कपड़े नहीं थे। बबलू जब संगीत कक्षा में गया तो उसके हाथों को गंदा बताकर उसे वहाँ के हार्मोनियम पर हाथ रखने से भी मना कर दिया गया।

लेकिन इन चारों में एक जिद थी। वे लौटते और जंगलों, खेतों, कच्ची सड़कों पर अपनी कला को फिर से जीते। दीप मिट्टी की दीवारों पर रंग उकेरता, झूमा खेतों में उगती धान की बालियों के बीच नाचती, कनक पेड़ों के नीचे मूर्तियाँ बनाती और बबलू नदी किनारे बाँसुरी बजाता। बबलू का सुर कभी-कभी भैंसों को इतना आकर्षित करता कि वे पास आकर बैठ जाती थीं और फिर उसे घंटों उन्हें भगाने में मशक्कत करनी पड़ती।

एक दिन गाँव में एक NGO की टीम आई। संस्था का नाम था "कलारुचि"। संस्था की मुखिया थीं माया दीदी – एक उम्रदराज महिला, जिनकी आँखों में अनुभव था और हृदय में करुणा। उन्होंने बच्चों की कलाएं देखीं, उनके चेहरे पढ़े और मुस्कराते हुए कहा, "इन बच्चों में सिर्फ कला नहीं, आत्मा है। हम इन्हें शहर ले चलेंगे।" पिता ने पहले मना कर दिया "शहर? हमारे बच्चे? अरे, वहाँ तो जाल में फँस जाते हैं लोग"। परंतु माया दीदी ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "अगर सपने घर में ही घुटने लगें तो डरना नहीं चाहिए, बल्कि दरवाज़ा खोलना चाहिए।"

और फिर शुरू हुआ एक नया अध्याय। कुछ ही सप्ताह में चारों बच्चे भुवनेश्वर पहुँचे। यह शहर उनके लिए सपनों की तरह था। तेज़ रफ्तार गाड़ियाँ, चौड़ी सड़कों पर भागते लोग और घर जिनमें पंखे नहीं, एसी चलते थे पर उनके लिए शुरुआत आसान नहीं थी। उनकी पहली सार्वजनिक प्रस्तुति एक स्कूल ऑडिटोरियम में थी। ऑडिटोरियम खचाखच भरा था। इतनी भीड़ देखकर बच्चों के हाथ-पैर ठंडे हो गए। दीप की उंगलियाँ काँपने लगीं, झूमा की आँखें मंच की रोशनी में झपकने लगीं, बबलू की बाँसुरी से पहली बार स्वर नहीं निकला और कनक की मूर्ति रखने से पहले ही उसके हाथ से फिसल गई।

जैसे ही प्रस्तुति शुरू हुई, कुछ अनहोनी हो गई। दीप का ब्रश गिर गया और वह घबराकर झुक गया, जिससे उसका रंग फैल गया। झूमा मंच की सीढ़ी से फिसल गई और उसके पाँव में मोच आ गई। बबलू ने उल्टी दिशा से बाँसुरी मुँह में लगा दी और पहला सुर "सा" की जगह "रे" निकल गया। कनक की मूर्ति की मेज़ हिल गई और मूर्ति फर्श पर गिरकर दो टुकड़े हो गई। यह सब देख दर्शकों में कुछ बच्चे हँसने लगे, पीछे से कुछ फुसफुसाहटें भी आईं, "गाँव वाले हैं, पता ही है।"

चारों बच्चों की आँखें भर आईं। वे मंच के पीछे दौड़ गए । किसी ने कुछ नहीं कहा पर सबके चेहरों पर वही एक भाव था-हार। तभी माया दीदी आईं। उन्होंने चारों को चुपचाप देखा, मुस्कराईं और बस इतना कहा, "तुमने गलती की, यानी तुमने हिम्मत की। गलतियाँ वही करते हैं जो कोशिश करते हैं। और जो हँसते हैं, उन्हें कभी मंच की गरिमा पता नहीं होती। तुम चारों मेरे लिए पहले ही विजेता हो। अगली बार, बस दिल से करो, बाकी मैं देख लूँगी।"

अगली प्रस्तुति एक हफ्ते बाद थी पर इस बार मंच पर चढ़ते समय चारों के चेहरे पहले जैसे नहीं थे। घबराहट अब भी थी पर उसमें एक दृढ़ता की आँच भी थी। मंच अब डराने वाला नहीं, खुद से मिलने की जगह बन गया था। दीप ने अपने चित्रों को इस बार सिर्फ रंगों से नहीं, कहानियों से रचा। हर रंग उसके जीवन की एक स्मृति था। नीला अब सिर्फ आसमान नहीं था, वह कंधमाल की भीगी दोपहरी था, जिसे उसने नाम दिया – "कंधमाल नीला"। पीला माँ की पुरानी साड़ी और धूप की गरमी से जन्मा "बिमला पीला"। और भूरे रंग में वह मिट्टी थी, जो उसके सपनों की जननी थी – "माटी भूरा"। जब लोगों ने उसकी पेंटिंग देखी, तो उन्होंने सिर्फ दृश्य नहीं देखे, उन्होंने भाव सुने।

झूमा का पाँव अब भी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था।

डॉक्टर ने आराम की सलाह दी थी पर उसने नाचने का निर्णय लिया। उसने मंच पर चप्पल पहनकर "घुमुरा" नृत्य प्रस्तुत किया। आमतौर पर मंच पर चप्पल पहनना असभ्य माना जाता पर उस दिन वह चप्पल ही उसकी पहचान बन गई और "गाँव की आत्मा" के रूप में प्रदर्शित हुई। दर्शकों ने उस आत्मीयता को महसूस किया, जब झूमा के पाँव माटी से जुड़े थे और नृत्य उसके भीतर के संघर्षों की परछाईं बन गया।

बबलू ने बाँसुरी हाथ में ली पर इस बार वह कोई राग या रचना नहीं बजा रहा था। वह अपने गाँव को मंच पर ला रहा था। उसकी बाँसुरी से जब पहली तान निकली तो उसमें गायों की घंटी की झनझनाहट थी, खेतों की हवा की सरसराहट थी और माँ की ममता की पुकार थी। किसी शास्त्रीय नाम से नहीं, उसने इसे नाम दिया – "ओडिशा राग"। वह स्वर नहीं था, एक स्मृति की साँस थी।

कनक के पास पहले की टूटी हुई मूर्तियाँ थीं पर उसने हार नहीं मानी। उसने उन टूटे टुकड़ों को जोड़ा, सजाया और एक नये आकार में गढ़ा, एक मूर्ति जो अधूरी होकर भी पूरी थी। उसका नाम था –"टूटकर जुड़ना"। यह सिर्फ मूर्ति नहीं थी, चार जिंदगियों के जख्मों और जिजीविषा की प्रतीक थी।

उस दिन मंच पर कला नहीं बिकी, आत्मा बिकी। दर्शकों ने तालियाँ नहीं, आँखें भरीं। उस प्रस्तुति के बाद शहर ने पहली बार इन बच्चों को कलाकार नहीं, जीवनदृष्टा की तरह देखा। धीरे-धीरे चारों ने शहर की चकाचौंध में अपनी पहचान गढ़ी। दीप को राज्य स्तरीय कला प्रतियोगिता में पहला स्थान मिला। उसके चित्रों में ओडिशा के मंदिरों, नदियों, मेलों और लोककथाओं की झलक होती। एक बार एक जज ने उससे पूछा, "तुम्हारे चित्र में ये सफेद बिंदियाँ क्यों हैं?" दीप ने जवाब दिया, "वो धान की बूँदें हैं, जो माँ के पसीने से बनीं हैं।" झूमा की एक प्रस्तुति को देखकर नृत्य समीक्षक ने लिखा, "उसकी आँखें भी नृत्य करती हैं।" कनक की टेराकोटा मूर्तियाँ मेले में बिकने लगीं। बबलू का गाना अब आकाशवाणी पर प्रसारित होने लगा।

पाँच साल के भीतर उन्होंने भुवनेश्वर में एक छोटा-सा कला केंद्र स्थापित किया नाम रखा "माटी कथा केंद्र"। वहाँ कनक बच्चों को मिट्टी की भाषा सिखाती थी, दीप रंगों के मनोविज्ञान पर बात करता, झूमा लड़कियों को आत्म-विश्वास सिखाती और बबलू बच्चों को लोकगीत गाकर इतिहास समझाता। एनजीओ (NGO) "कलारुचि" की मदद से धीरे-धीरे यह केंद्र बढ़ने लगा। गाँव और शहर के वे बच्चे यहाँ आने लगे, जो कलाओं को सीखना चाहते थे। माया दीदी ने अपने अनुभव और संसाधन जुटाकर इसे एक स्थायी संस्था में तब्दील कर दिया।

बारूनिपाड़ा के चारों भाई-बहन, जो कभी जमीन के साथ गढ़ गए थे, अब मिट्टी की खुशबू लिए नई पीढ़ी को आगे बढ़ा रहे थे। उनकी कहानी अब एक प्रेरणा थी कि गरीबी कभी प्रतिभा की राह में बाधा नहीं बन सकती। वे अपने-अपने जीवन में सफल हुए पर वे कभी अपने गाँव, अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति को नहीं भूले। हर दीपावली, रज और सबसे बड़े त्योहार रथ यात्रा पर वे सब मिलकर लौटते और ओडिशा की लोक कला को नई ऊर्जा देते।

उनके संघर्षों की गाथा में हँसी, आँसू और उम्मीद का मेल था। उनकी यात्रा बताती है कि कला और संस्कृति के माध्यम से कैसे जड़ें मजबूत होती हैं और कैसे कठिनाइयों में भी उम्मीद की लौ जलती रहती है। यह कहानी सिर्फ चार बच्चों की नहीं बल्कि उन अनगिनत आत्माओं की है, जो अपनी मिट्टी से जुड़े रहकर अपनी पहचान बनाती हैं और यह साबित करती है कि असली समृद्धि केवल धन-दौलत में नहीं बल्कि अपनी संस्कृति, अपनी कला और अपने सपनों के प्रति समर्पण में निहित होती है।

●●●

ओडिशा में कठपुतली कलाः छाया और कहानियों की एक जीवंत परंपरा

श्री यशराज मिश्रा
लेखाकार

भगवान जगन्नाथ की भूमि ओडिशा, पारंपरिक भारतीय कलाओं के उद्गम स्थलों में से एक है और कठपुतली कला इसकी जीवंत सांस्कृतिक विरासत में एक विशेष स्थान रखती है। मनोरंजन के एकमात्र साधन से कहीं अधिक, ओडिशा में कठपुतली कला एक प्राचीन परंपरा है जो कहानी सुनाने, धार्मिक शिक्षा और सामाजिक टिप्पणी के माध्यम के रूप में कार्य करती है। यह हिंदू महाकाव्यों, स्थानीय लोक-कथाओं और नैतिक कथाओं के ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम रही हैं। यह राज्य कठपुतली कला के सभी चार प्रमुख रूपों "दस्ताना कठपुतली, छड़ कठपुतली, तार कठपुतली और छाया कठपुतली" की समृद्ध परंपरा के लिए भारत में अद्वितीय स्थान रखता है। इनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट शैली और इतिहास है।

ऐतिहासिक परिदृश्य और विकास : भारत में कठपुतली कला की उत्पत्ति नाट्य शास्त्र से जुड़ी है जो प्रदर्शन कलाओं का एक आधारभूत ग्रंथ है। ओडिशा की कठपुतली कला का विकास उसकी मंदिर परंपराओं, भक्ति साहित्य और लोक संगीत के साथ-साथ हुआ। भक्ति आंदोलन के दौरान जयदेव और पंचसखा जैसे कवियों ने दिव्य प्रेम और आध्यात्मिक उत्कंठा के विषयों को लोकप्रिय बनाया, जो स्वाभाविक रूप से कठपुतली रंगमंच में भी समाहित हो गए। लोक परंपराओं के साथ विकसित हुई इस कला के शो विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आयोजनों के अभिन्न अंग थे एवं आज भी हैं, जिन्हें अकसर त्योहारों, ग्रामीण मेलों और अनुष्ठानों के दौरान प्रदर्शित किया जाता है। सदियों से ओडिशा के कठपुतली कलाकारों ने रामायण, महाभारत और पुराणों के साथ-साथ स्थानीय किंवदंतियों की कहानियों को भी अपने दर्शकों के लिए आकर्षक कथाएं रचने के लिए कुशलता से रूपांतरित किया है।

ओडिशा में कठपुतली कला के प्रकारः

i. **दस्ताना कठपुतली (कुंधेई-नाचा)**:- ओडिशा की दस्ताना कठपुतली परंपरा को कुंधेई-नाचा के नाम से भी जाना जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- "गुड़िया नृत्य"। यह कठपुतली कला का एक सरल और अंतरंग रूप है जिसमें केवल दो पात्र होते हैं "कृष्ण और राधा"। ये दस्ताना कठपुतलियाँ नाम के अनुरूप हाथ में पहनी जाती हैं और कठपुतलियों के संचालक की उंगलियाँ आकृति के सिर और भुजाओं को नियंत्रित करती हैं। यह प्रदर्शन दर्शकों के सामने आमतौर पर बिना किसी ऊँचे मंच या पर्दे के ज़मीन पर किया जाता है। एक विशिष्ट कुंधेई-नाचा मंडली में दो लोग होते हैं- मुख्य कठपुतली संचालक और एक ढोल वादक जो प्रदर्शन में भी मदद करता है। ढोल वादक ढोलक का उपयोग करता है परंतु चतुराई से किए गए संचालन में कठपुतली स्वयं ढोलक बजाती हुई प्रतीत होती है, जिससे एक आकर्षक दृश्य भ्रम पैदा होता है। कुंधेई-नाचा के विषय भक्तिपूर्ण होते हैं जो मुख्यत: राधा-कृष्ण की कथाओं से लिए गए हैं। हालांकि इन्हें हल्के-फुल्के और हास्यपूर्ण लहजे में प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रदर्शन जटिल कथा वाचन के बजाय गीत और कविता से अधिक प्रेरित हैं जो अक्सर ओडिया साहित्य और लोक संगीत से प्रेरित होता है। इसका आकर्षण नाटकीय तमाशे की जगह काव्यात्मक और संगीतमय अभिव्यक्तियों में निहित होता है।

ii. **छड़ी कठपुतली (काठी-कुंधेई-नाचा)**: ओडिशा में छड़ी कठपुतली को काठी-कुंधेई-नाचा के नाम से जाना जाता है, जिसमें "काठी" का अर्थ छड़ी या छड़ होता है। इस रूप में इस्तेमाल की जाने वाली कठपुतलियाँ

अपेक्षाकृत छोटी होती है, जिनकी ऊँचाई लगभग 12 से 18 इंच होती है। कठपुतलियों के नियंत्रण के लिए उनके सिर छड़ों से जुड़े होते हैं जबकि हाथ डोरियों से बंधे होते हैं। कठपुतलियों को लकड़ी से सावधानी से तराशा जाता है, रंगा जाता है और उन्हें विशेष वेशभूषा पहनाई जाती है, जो जात्रा कलाकारों की वेशभूषा और श्रृंगार से मिलती जुलती होती हैं।

छड़ी कठपुतली के कलाकार, दस्ताना कठपुतली के कलाकारों के विपरीत एक पर्दे के पीछे बैठकर नीचे से कठपुतलियों को नियंत्रित करते हैं। इसका प्रदर्शन ओपेरा जैसा होता है, जिसमें अधिकांश संवाद बोले जाने के बजाय पारंपरिक लोक धुनों और ओडिशी शास्त्रीय धुनों के मिश्रित संगीत में सुंदरता से गाए जाते हैं। काठी-कुंधेई-नाचा का संग्रह व्यापक है जिसमें रामायण, महाभारत और पुराणों की विविध कथाएं, साथ ही सामाजिक मुद्दों पर व्यंग्यात्मक नाटक शामिल होते हैं।

iii. **तार कठपुतली (सखी-कुंधेई):** ओडिशा में तार कठपुतली को सखी-कुंधेई कहा जाता है जहाँ "सखी" शब्द का अर्थ है मित्र या साथी। इसका इस्तेमाल संभवत: कृष्ण कथाओं में राधा की गोपियों या सखियों का संदर्भ देते हुए या कठपुतलियों के प्रति स्नेह के रूप में भी किया जाता है। ये कठपुतलियाँ दस्ताना या छड़ी वाली कठपुतलियों की तुलना में अधिक सुस्पष्ट होती है जिसमें कई जोड़ होते हैं, जो उन्हें बहुमुखी और विविध प्रकार के भावपूर्ण हाव-भाव करने में सक्षम बनाता है। अन्य परंपराओं के विपरीत, इनका छड़ गोल होता है और पैर नहीं होते हैं और ये एक त्रिकोणीय लकड़ी के सहारे से बंधी डोरियां द्वारा लटकी होती हैं। वेशभूषा में लंबी लटकती हुई स्कर्ट चलने या नाचने का आभास देती हैं।

कठपुतलियों के डिजाइन मंदिर कला और ओडिशा के लोक नाट्य कलाकारों की वेशभूषा से प्रेरित होते हैं। प्रदर्शन गीतात्मक और संगीतमय होते हैं जिनमें गीतों का बोलबाला होता है और संवाद कम होते हैं। विषयगत रूप से ये कृष्ण कथाओं पर केंद्रित होते हैं, जिनमें कभी-कभी रामायण की झलक पाई जाती है। संगीत, शैलीगत गति और दृश्य डिजाइन का संयोजन इसके प्रदर्शन को आकर्षण प्रदान करता है।

iv. **छाया कठपुतली (रावण छाया):** ओडिशा की सभी कठपुतली कला रूपों में "रावण छाया" दार्शनिक और कलात्मक रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसका नाम "रावण की छाया" है जो अपने आप में विचित्र है क्योंकि कथा रामायण पर केंद्रित है और नायक भगवान "राम" हैं। हालांकि इस नाम के पीछे आध्यात्मिक तर्क है। संस्कृत और ओडिया में देवता को प्रकाशमान माना गया है, जो छाया नहीं डाल सकता है। इसलिए इस प्रदर्शन का नाम/शीर्षक उस एकमात्र पात्र के नाम पर रखा गया है जिसकी छाया शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में दिखाई देती है।

भारत में अन्य छाया कठपुतली परंपराओं जिनमें रंगीन जोड़वाली कठपुतलियों का उपयोग किया जाता है, के विपरीत रावण छाया कठपुतलियां रंगहीन, जोड़रहित और मृगचर्म से बनी होती हैं। इन कठपुतलियों में जटिल नक्काशी की जाती है और इनमें छिद्र होते हैं जिनसे प्रकाश आर-पार जा सकता है, जिससे पर्दे पर आकर्षक, एकवर्णी आकृतियाँ बनती हैं। कठपुतलियों को एक ही छड़ से चलाया जाता है जिसके लिए संचालक को अधिक कौशलयुक्त और निपुण होना आवश्यक है। इस परंपरा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें रावण की कठपुतली, भगवान राम की कठपुतली से बड़ी बनाई जाती है जो प्रतीकात्मक रूप से प्रतिपक्षी के

रूप में नाटकीय उपस्थिति पर जोर देता है।

पारंपरिक रावण छाया का प्रदर्शन एक सफेद पर्दे के पीछे होता है, जहाँ कठपुतली कलाकारों के पीछे एक प्रकाश स्रोत (ऐतिहासिक रूप से एक तेल का दीपक) रखा होता है। संचालक, जो दर्शकों से छिपे रहते हैं, प्रकाश स्रोत और पर्दे के बीच कठपुतलियों को नियंत्रित करते हैं। मंडली का नेता, जो दर्शकों को दिखाई देता है, खंजनी (एक प्रकार का वाद्ययंत्र) बजाते हुए गाता और कहानी सुनाता है। यह कथा लगभग पूरी तरह से विश्वनाथ खुंटिया द्वारा रचित मध्यकालीन ओडिया महाकाव्य "विचित्र रामायण" से ली गई है। रावण छाया नाम इस मान्यता से उत्पन्न हुआ है कि भगवान राम एक दिव्य व्यक्तित्व होने के कारण, छाया नहीं डालते। रावण छाया की विशेषता इसकी अमूर्तता और विचारोत्तेजकता है। इसमें दृश्य यथार्थवाद बहुत कम है, जबकि यह भावनात्मक और दार्शनिक प्रतिक्रियाओं को जगाने के लिए प्रतीकों, छायाओं और संगीत पर निर्भर करता है। छायाएं न केवल दृश्य निरुपण के रूप में बल्कि रामायण में चित्रित आध्यात्मिक यात्रा, आंतरिक संघर्ष और नैतिक दुविधाओं के रूपकों के रूप में काम करती हैं।

समकालीन चुनौतियाँ:

मोबाइल, टेलीविजन और सिनेमा जैसे आधुनिक मनोरंजन माध्यमों के उदय ने इन पारंपरिक कला रूपों के अस्तित्व के लिए एक बड़ी चुनौती पेश की है। पुनरूद्धार के प्रयासों के बावजूद यह कला गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है। अधिकांश कठपुतली कलाकार गरीबी में जीवन यापन करते हैं और उनके पास नियमित दर्शकों, औपचारिक शिक्षा प्रणालियों या स्थायी मंचों तक पहुँच नहीं है। डिजीटल मीडिया के उदय ने इन विधाओं को और भी हाशिए पर धकेल दिया है। सरकारी और संस्थागत समर्थन सीमित और दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए अपर्याप्त है।

कठपुतली कलाकारों और सांस्कृतिक संस्थाओं की नई पीढ़ी इन्हें संरक्षित और पुनर्जीवित करने के लिए काम कर रही है। वे कला के मूल सार के प्रति सच्चे रहते हुए समकालीन दर्शकों को आकर्षित करने के लिए विषयों, तकनीकों और प्रस्तुति को आधुनिक बना रहे हैं। साथ ही, इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए कठपुतली कला को विद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल करने, सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से इसे बढ़ावा देने और विभिन्न सहयोग के अवसर पैदा करने की तत्काल आवश्यकता है। ऐसे कदम कठपुतली कला को उसके मूल मूल्यों से समझौता किए बिना अनुकूलित करने में मदद कर सकते हैं।

निष्कर्ष:

ओडिशा की कठपुतली कला, कुंधेई-नाचा की काव्यात्मक सरलता से लेकर रावण छाया की दार्शनिक गहराई तक सौंदर्य, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। ये विधाएं न केवल अतीत के अवशेष हैं बल्कि जीवंत परंपराएं हैं, जो मिथक, संगीत और आंदोलन के माध्यम से सार्वभौमिक मानवीय अनुभवों को व्यक्त करती हैं। इसका संरक्षण और संवर्धन न केवल अतीत के प्रति श्रद्धांजलि है बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान के भविष्य में निवेश भी है।

•••

ओडिशा की हस्तकलाएं: एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर

श्री गौरव यादव
सहायक लेखा अधिकारी

ओडिशा, पूर्वी भारत का सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राज्य है, जो अपनी अनूठी हस्तकला, परंपराओं, गहन ऐतिहासिक विरासत और कलात्मक उत्कृष्टताओं के लिए प्रसिद्ध है। यहां की हस्तकलाएं न केवल राज्य की धार्मिक और स्थापत्य परंपराओं को दर्शाती हैं बल्कि ग्रामीण जीवन, लोककथाओं और पीढ़ियों से चली आ रही सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को भी जीवंत रूप में प्रस्तुत करती हैं। ओडिशा की कला न केवल सौंदर्यबोध से भरपूर है बल्कि हर रचना एक कहानी कहती है। कभी मंदिरों की दीवारों पर उकेरे गए शिल्प के माध्यम से, तो कभी रंग-बिरंगे कपड़ों में बुने गए लोक जीवन के चित्रण के रूप में। इन कलाओं में कारीगरों की निपुणता, श्रद्धा और पारंपरिक ज्ञान की गहराई समाहित होती है।

ओडिशा की प्रमुख हस्तकला शैलियाँ निम्नलिखित हैं:

1. पट्टचित्र

पट्टचित्र ओडिशा की सबसे प्रसिद्ध चित्रकला है, जिसका अर्थ है "कपड़े पर चित्र"। यह कला भगवान जगन्नाथ, रामायण, महाभारत और कृष्ण लीला जैसे धार्मिक विषयों पर आधारित होती है। इसमें चमकीले रंगों और बारीक रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। चित्र बनाने से पहले कपड़े को विशेष प्रकार के लेप और चाक से तैयार किया जाता है।

2. एप्लीक वर्क - चांदुआ कला

यह कटक जिले के पिपली गाँव में विशेष रूप से प्रचलित है। इस कला में रंग-बिरंगे कपड़ों को काटकर विभिन्न आकृतियों में सिलाई की जाती है, जिनका उपयोग झंडियों, छतरियों, टेंट और दीवार सजावट के लिए किया जाता है। यह कला रथयात्रा के अवसर पर भगवान जगन्नाथ की रथ सजावट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3. धातु कला-धोकड़ा कला

कोणार्क और केंद्रापाड़ा क्षेत्रों में धातु से बनी मूर्तियों और सजावटी वस्तुओं का निर्माण होता है। पीतल, कांस्य और अन्य धातुओं से भगवानों की मूर्तियाँ, दीपक, घंटियाँ और वाद्य-यंत्र बनाए जाते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध धोकड़ा कला है, जो वैक्स-कास्टिंग तकनीक से बनाई जाती है।

4. पत्थर की नक्काशी

ओडिशा की यह कला विश्व प्रसिद्ध है। कोणार्क का सूर्य मंदिर, लिंगराज मंदिर और जगन्नाथ मंदिर इसकी उत्कृष्ट मिसाल हैं। कलाकार विभिन्न प्रकार के पत्थरों पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और जटिल सजावटी डिजाइन उकेरते हैं।

5. लकड़ी की नक्काशी

ओडिशा के कलाकार लकड़ी पर सुंदर नक्काशी करके दरवाजे, मंदिर की सजावट, खिलौने और रोज़मर्रा की उपयोगी वस्तुएं बनाते हैं। भगवान जगन्नाथ की रथ यात्रा में प्रयुक्त रथ भी इस कला का अद्भुत उदाहरण है।

6. टेराकोटा और मिट्टी की मूर्तियाँ

गांवों में खासतौर पर मिट्टी से देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, खिलौने और घरेलू सजावटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। यह कला सादगी में सौंदर्य का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

7. साड़ी और वस्त्र कला-संबलपुरी और बॉमकाई

ओडिशा की साड़ियाँ देश-विदेश में प्रसिद्ध हैं। संबलपुरी साड़ी में "इकत" तकनीक का प्रयोग होता है, जिसमें पहले धागों को रंगा जाता है और फिर बुना जाता है। बॉमकाई साड़ी पारंपरिक डिजाइनों और कढ़ाई से सुसज्जित होती है।

8. तसर सिल्क

ओडिशा का तसर रेशम बहुत प्रसिद्ध है, खासकर मयूरभंज और क्योंझर जिलों में। यह रेशम प्रकृति से प्राप्त होता है और इसमें पारंपरिक डिजाइनों के साथ-साथ प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। इससे बनी साड़ियाँ और वस्त्र बहुत ही सुंदर और टिकाऊ होते हैं।

9. सींग और हाथीदांत की कारीगरी

यह कला विशेषकर क्योंझर और कटक में देखने को

मिलती है। गाय और भैंस के सींगों से विभिन्न सजावटी वस्तुएं, खिलौने और उपयोगी सामग्रियाँ बनाई जाती हैं। पहले हाथीदांत का भी प्रयोग होता था लेकिन अब यह प्रतिबंधित है और पर्यावरण-अनुकूल सामग्री का उपयोग किया जाता है।

10. बांस और बेंत की कारीगरी

ओडिशा के आदिवासी समुदाय बांस और बेंत से सुंदर टोकरियाँ, चटाइयाँ, फर्नीचर और सजावटी वस्तुएं बनाते हैं। सुंदर डिजाइन, हल्कापन और उपयोगिता के कारण यह शहरी बाज़ारों में भी लोकप्रिय हो रहा है।

11. ताड़पत्र लेखन और चित्रकारी

ताड़ के पत्तों को सुखाकर उन पर बारीक नक्काशी और चित्रकारी की जाती है। यह परंपरा बहुत पुरानी है और इसमें धार्मिक ग्रंथों, ज्योतिष शास्त्रों और पुराणों की कथाओं को चित्रों और श्लोकों के रूप में उकेरा जाता है। रघुराजपुर गाँव इस कला के लिए प्रसिद्ध है।

12. गोटीपुआ-नृत्य परिधान और अलंकरण

गोटीपुआ ओडिशा का पारंपरिक नृत्य है जो ओडिसी नृत्य की पूर्वज शैली मानी जाती है। इसके लिए विशेष प्रकार के वस्त्र, गहने और मेकअप की जरूरत होती है। यह भी एक हस्तकला के रूप में तैयार की जाती है, जिसमें स्थानीय कारीगरों का हाथ होता है।

13. मुखौटा कला

मुखौटे धार्मिक नाटकों, लोक नाट्य और परंपरागत नृत्यों में उपयोग होते हैं। यह खासकर गंजाम और पुरी जिलों में प्रचलित है। लकड़ी, कागज की लुगदी और कपड़े से बने ये मुखौटे देवी-देवताओं, राक्षसों और लोक पात्रों को दर्शाते हैं।

14. बेल धातु की कला

यह कारीगरी मुख्यत: सिकारपुर और बालांगीर जिलों में होती है। इसमें घंटियां, पूजा के बर्तन, मूर्तियाँ और सजावटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। इन वस्तुओं में सुंदर आकृतियाँ और जटिल डिजाइन होते हैं।

15. लटकु लकड़ी की गुड़िया

नवरंगपुर जिले में बनने वाली लकड़ी की रंगीन गुड़िया और खिलौने पारंपरिक लकड़ी और लेकर (लाख) से बनाए जाते हैं। इनका उपयोग बच्चों के खेल और सजावटी वस्तुओं के रूप में होता है।

16. सहारिया पेंटिंग

यह आदिवासी पेंटिंग शैली है जो ओडिशा के सहारिया जनजाति से जुड़ी है। इसमें ज्यामितीय आकृतियों में देवता, जीवन चक्र, पर्व और प्रकृति को दर्शाया जाता है। यह कला दीवारों और अब कपड़ों पर भी की जाती है।

17. प्राकृतिक रंगों की रंगाई

कई ग्रामीण इलाकों में अभी भी कपड़े प्राकृतिक रंगों से रंगे जाते हैं। हल्दी, नीम, कत्था, और फूलों से निकाले गए रंगों का उपयोग वस्त्रों और चित्रकारी में किया जाता है।

18. तारकशी चांदी की महीन कारीगरी

यह विशेष रूप से कटक में प्रचलित है। तारकशी में चांदी की बारीक तारों से गहने, झूमर, देव मूर्तियाँ और सजावटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। इसे "फिलिग्री वर्क" भी कहा जाता है और यह 500 साल पुरानी परंपरा है।

19. मृत्तिका शिल्प

इसके द्वारा विभिन्न प्रकार की मिट्टी से बने बर्तन, दीए, गणेश-लक्ष्मी की मूर्तियाँ, हांडी आदि बनते हैं। विशेष रूप से दीवाली और अन्य त्योहारों पर स्थानीय कुम्हारों द्वारा बनाए गए दीए और सजावटी वस्तुएं लोकप्रिय हैं।

20. आदिवासी शिल्प

ओडिशा के कोरापुट, मलकानगिरी, सुंदरगढ़ और क्योंझर जैसे जिलों में रहने वाली जनजातियाँ कई प्रकार की कलाकृतियाँ बनाती हैं। बीज के गहने, जंगली धातु से बने औजार और गहने, लकड़ी के मुखौटे, प्राकृतिक रंगों से चित्रकारी इत्यादि।

21. लाख की चूड़ियाँ और आभूषण

लाख (लाख की गोंद) से रंग-बिरंगे चूड़ियाँ, कंगन, हार, झुमके आदि बनाए जाते हैं। पारंपरिक मेले और ग्रामीण बाजारों में ये बहुत लोकप्रिय होते हैं।

अंतत: यह कहा जा सकता है की ओडिशा की हस्तकला केवल कला नहीं बल्कि जीवन का एक दर्शन है। यह न केवल स्थानीय लोगों की आजीविका का साधन है बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर भी है। आज जब मशीनों की दुनिया में हस्तनिर्मित वस्तुएं धीरे-धीरे कम हो रही हैं, ऐसे समय में ओडिशा की यह कलाएं हमें हमारी जड़ों से जोड़े रखती हैं और दुनिया को भारत की कलात्मक आत्मा से परिचित कराती हैं। यदि आप ओडिशा की यात्रा करें तो वहां की हस्तकलाओं को नज़रअंदाज़ न करें क्योंकि हर वस्तु में एक कहानी छिपी होती है।

●●●

ओडिशा की कला एवं संस्कृति

श्री संजीव दुबे
लेखाकार

ओडिया संस्कृति अपनी समृद्ध विरासत और परंपराओं के लिए जानी जाती है। ओडिशा में चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीत और नृत्य की विशिष्ट परंपरा है। किसी भी राष्ट्र के विकास में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ओडिशा भारत के सबसे प्राचीन राज्यों में से एक है, जो सांस्कृतिक रूप से एक समृद्ध राज्य है। ओडिशा की कला एवं संस्कृति अपने आप में अद्वितीय है। यह केवल प्रदर्शन कला नहीं है बल्कि इसमें कला के अन्य रूप भी शामिल हैं। ओडिशा राज्य की अपनी संस्कृति और विरासत है जिसे दुनिया के सामने प्रदर्शित करने में गर्व का अनुभव होता है। यहाँ पर्यटकों के लिए तो मानो खजाने हैं। पर्यटक यहाँ जगन्नाथ मंदिर जैसे कई प्राचीन मंदिर, सुंदर प्राकृतिक दृश्य और वन्य जीवन का आनंद ले सकते हैं।

यद्यपि ओडिशा मुख्य रूप से भगवान जगन्नाथ के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है लेकिन इसके प्रत्येक जिले की अपनी विशिष्ट परंपरा और शानदार कला के साथ समृद्ध संस्कृति है। आधुनिक ओडिशा ने 1 अप्रेल 1936 को अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया। भाषा के आधार पर बनने वाला यह देश का पहला राज्य था। ओडिशा की सांस्कृतिक विरासत पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। ओडिशा भारत में जैन धर्म, बौद्ध धर्म जैसी सभी धार्मिक संस्कृतियों का गढ़ है। ओडिशा की इसी धरती पर महावीर द्वारा जैन धर्म का प्रचार हुआ। फिर बौद्ध धर्म लंबे समय तक जारी रहा और बाद में जगन्नाथ पंथ में विलीन हो गया। ओडिशा में असंख्य मंदिर तथा मूर्तिकला वाले स्मारक है, जिनके लिए इसे देश का वास्तविक संग्रहालय कहा जाता है। ओडिया वास्तुकला अपनी समृद्धि के कारण अद्वितीय स्थान रखती है। जगन्नाथ मंदिर, कोणार्क, मुक्तेश्वर, लिंगराज जैसे मंदिर स्वदेशी कारीगरों की कला कौशल का उदाहरण है जिन्होंने इन मंदिरों को पत्थर से बनाया और इनकी दीवारों पर मूर्तिकला की ऐसी बेहतरीन कारीगरी की गई है कि इन मंदिरों की आकृतियाँ जीवित प्रतीत होती हैं। कलाकारों ने मूर्ति की आकृतियों में ऐसा भाव भर दिया है मानो वे आगंतुकों को अपनी भाषा, संस्कृति और कला बता रही हैं।

ओडिशा में कई त्योहार हैं जो काफी धूमधाम से मनाए जाते हैं। सबसे प्रसिद्ध पुरी में आयोजित एक महान त्योहार है, जिसे भगवान जगन्नाथ का कार महोत्सव या रथयात्रा के नाम से जाना जाता है। इस यात्रा में तीन भव्य रूप से सुसज्जित लकड़ी के रथों में भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और देवी सुभद्रा भक्तों को दर्शन देने के लिए मंदिर से बाहर आते हैं। यह रथयात्रा न केवल ओडिशा में बल्कि देश-विदेश के अन्य हिस्सों में भी मनायी जाती है।

ओडिशा की कला और संस्कृति बहुत समृद्ध और

विविधताओं से भरी हुई है, जिसमें शास्त्रीय नृत्य ओडिसी, पारंपरिक संगीत, मंदिर वास्तुकला, पट्टचित्र चित्रकला और रथयात्रा जैसे त्योहार शामिल है। कला की बात करें तो एक पारंपरिक कला है-पट्टचित्र, जो कपड़े या ताड़ के पत्तों पर धार्मिक और पौराणिक दृश्यों को दर्शाती है। चित्रकला की पट्टचित्र शैली सबसे पुराने और सबसे लोकप्रिय कलाओं में से एक है। ओडिशा की प्राचीन कलाकृतियों में से पट्टचित्र कलाकृति पौराणिक कथाओं और इसमें वर्णित लोककथाओं के लिए भी जानी जाती है। इस चित्रकला के चित्रकार स्वयं अपने रंग तैयार करते हैं। यह चित्रकला ओडिशा के अलावा पश्चिम बंगाल में भी काफी प्रचलित है। पट्टचित्र किसी कथा पर आधारित चित्र श्रृंखला है। रामायण, महाभारत की कहानियाँ आमतौर पर इनके विषय होते हैं। पट्टचित्र कैनवास पर बनाई गई पेंटिंग है, जिसकी परंपरा हजारों साल पुरानी है।

ओडिशा के नृत्य और संगीत दुनिया भर में प्रसिद्ध है जिसकी उत्पति इसी राज्य में हुई। इस राज्य के लोग ओड़िया बोलते हैं, जो इस राज्य की स्थानीय भाषा है। पिपली की आकर्षक कलाकृति, कटक की शानदार चाँदी की नक्काशीदार कलाकृतियाँ, नीलगिरी के प्रमुख पत्थर के बर्तन, संबलपुर की संबलपुरी साड़ी जैसे उत्पाद इस राज्य को कला और संस्कृति की भूमि बनाती है।

अक्सर पर्यटकों को ओडिशा की महान कला और संस्कृति बहुत पसंद आती है। विशेष रूप से इस राज्य के त्योहार, प्राकृतिक सुंदर स्थान, आदिवासी गाँव इत्यादि पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते है। ओडिशा की वास्तुकला की उत्कृष्टता और भव्यता इसके मंदिरों में दिखती है। लिंगराज मंदिर भुवनेश्वर के सभी मंदिरों में सबसे बड़ा मंदिर है। पुरी के जगन्नाथ मंदिर चार धामों में से एक है। सात घोड़ों और 24 पहियों वाले एक विशाल रथ की आकृति में निर्मित किए गए कोणार्क का सुर्य मंदिर विश्व प्रसिद्ध है। इस मंदिर की कल्पना सूर्य देवता के रथ के रूप में की गई है। यह वास्तुकारों की असाधारण प्रतिभा को दिखाता है।

ओडिशा की कलाओं में से एक रॉक पेंटिंग भी है। ओडिशा में रॉक आर्ट का इतिहास बहुत पुराना है। इसके अलावा रेत कला भी एक प्रसिद्ध कला है। साफ बारीक रेत और पानी से बनी यह कला एक स्वदेशी कला है। पुरी के समुद्री तट पर इस कला का प्रदर्शन हिंदू देवी-देवताओं से लेकर अंतर्राष्ट्रीय अवसरों पर देखा जा सकता है। पर्यटन की मदद से इस कला का तेजी से विकास हुआ है और दुनिया भर में इसे पहचान मिली है।

कटक में "तारकसी" नामक कला भी मशहूर है। ओडिशा का सिल्वर सिटी कहे जाने वाले शहर कटक में यह कला शुरू हुई। इसमें चाँदी को छोटे-छोटे छेदों की एक श्रृंखला के माध्यम से खींचकर तार के महीन धागे बनाए जाते हैं। आम तौर पर दुर्गा पूजा के दौरान और ओडिसी नृत्य में नर्तकियों द्वारा तथा दुर्गा की मूर्तियों को सजाने के लिए तारकसी आभूषणों का प्रयोग होता है।

इसी तरह ढोकरा हजारों साल पुराना शिल्प है जो धातुकर्म कौशल को मोम तकनीक से जोड़ता है। बर्तन, धूपदान, दीपक तथा आदिवासी आभूषण इस कला से बनाए जाते हैं।

ओडिशा के नृत्य कलाओं में ओडिसी नृत्य मंदिर की संस्कृति से मेल खाता है। इस नृत्य में मूल रूप से पौराणिक कहानी, प्रतीकात्मक वेशभूषा, अभिनय तथा हाव-भाव शामिल होते हैं जो बेहद सुंदर होते हैं। छाऊ नृत्य भी ओडिशा में काफी प्रसिद्ध है। यह आदिवासी मार्शल नृत्य है।

इसके अलावा सबसे प्रसिद्ध नृत्य है संबलपुरी। संबलपुरी नृत्य की शुरूआत संबलपुर की जनजातियों में हुई। इसमें प्राय: पुरूष, संबलपुरी साड़ियों में सुसज्जित महिला नर्तकियों के साथ ढोल तथा अन्य संगीतकार के रूप में शामिल होते हैं तथा साथ मिलकर रामायण, महाभारत तथा अन्य कहानियों का वर्णन करते हैं।

इस प्रकार कला एवं संस्कृति की अपार विरासत ओडिशा में मौजूद है। ओडिशा में 90% से ज्यादा आबादी हिन्दू धर्म का पालन करती है। ओडिशा की सांस्कृतिक विविधता सराहनीय है। ऐसा कहा जाता है कि यह राज्य देश के दक्षिणी और उत्तरी हिस्सों के बीच एक तटीय गलियारे के रूप में खड़ा है।

ओडिशा के लोग काफी सीधे-सादे और मिलनसार प्रवृति के हैं। यहाँ के लोग जीवन के सरल सुखों में आनंद पाने वाले हैं। वे न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ भी व्यवहारिक है। ओडिशा के लोग गरीब हो सकते हैं लेकिन एक कटोरी पखाल

भात उनके चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए काफी है। संस्कृति और परंपरा किसी भी ओडिया परिवार के जीवन में बहुत मायने रखता है। यहाँ के लोग अतिथियों का स्वागत करते हैं।

ओडिशा के लोगों का प्रमुख भोजन चावल है। भोजन में यहाँ चावल-दाल, दालमा, मछली बड़े चाव से खाया जाता है। छेना पोड़ा प्रमुख मिठाई है।

ओडिशा की मुख्य संस्कृति अपनी प्राचीन परंपराओं में गहराई से निहित है। स्वादिष्ट ओडिया व्यंजनों सहित यहाँ की आदिवासी संस्कृति अपनी परंपराओं और शिल्प कौशल के साथ सांस्कृतिक ताने-बाने में चार चाँद लगा देती है। ओडिशा की सांस्कृतिक कला, पारंपरिक संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत को समेटे हुए हैं। ओडिशा के त्योहार जैसे रज, रथयात्रा, दुर्गा पूजा इत्यादि इस राज्य के जीवंत सांस्कृतिक दृश्य को दिखाते है। हर त्योहार को ओडिशा के लोग बड़े धूमधाम से मनाते हैं। ओडिशा सांस्कृतिक परंपराओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों का एक आकर्षक मिश्रण है जो इसकी सांस्कृतिक विरासत में निहित है।

ओडिशा की पारंपरिक पोशाक ओडिशा की कला एवं संस्कृति का एक रंगीन ताना-बाना है, जो राज्य की सांस्कृतिक विविधता और विरासत को एक साथ बुनती है। ओडिशा की कला एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली संबलपुरी साड़ी अपने चमकीले रंगों के साथ ओडिशा की कला का एक उत्कृष्ट नमूना है जो विभिन्न अवसरों पर महिलाओं को सुशोभित करती है। दूसरी ओर पुरुष अकसर धोती और कुर्ता जैसे पारंपरिक परिधान पहनते हैं जो उनकी सादगी को दिखाता है। ओडिशा की संस्कृति को और आकर्षक बनाने वाली चीज है-यहाँ के आदिवासी समुदाय के कपड़े। प्रत्येक आदिवासी जनजाति की अपनी अनूठी शैली है। ये पारिवारिक पोशाक केवल वस्त्र नहीं है बल्कि ओडिशा की समृद्ध संस्कृति के जीवंत प्रतीक हैं, जो सदियों पुरानी परंपराओं को संरक्षित करती है।

ओडिशा का आदिवासी समुदाय अपनी विशिष्ट कला, संगीत और नृत्य शैलियों के साथ ओडिशा की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता में योगदान करते हैं। इस समुदाय के लोग अपनी भाषा बोलते हैं और पारंपरिक पोशाक पहनते हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति इन जनजातियों के लिए जीवन का एक तरीका है, जो उनके कपड़ों के डिजाइन और उनके नृत्य के रूप में देखा जा सकती है। उनका त्योहार एक खुशी का उत्सव होता है जो पूरे समुदाय को एक साथ लाता है।

ओडिशा की संस्कृति इन आदिवासी समुदायों से गहराई और विविधता प्राप्त करती है। वे सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक की तरह काम करते हैं, जो आधुनिक दुनिया के चकाचौंध में भी प्राचीन परंपराओं को संरक्षित किए हुए हैं।

ओडिशा में धर्म इसकी सांस्कृतिक संरचना के साथ गहराई से जुड़ा है। जगन्नाथ मंदिर राज्य के धार्मिक पहचान का प्रतीक है और रथयात्रा एक भव्य उत्सव है, जिसमें देशभर से श्रद्धालु आते हैं। उत्कल दिवस एक महत्वपूर्ण अवसर है जो राज्य के गठन का स्मरण कराता है। सांस्कृतिक और धार्मिक त्योहार ओडिशा के लोगों के सामूहिक पहचान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ओडिशा की कला एवं संस्कृति न केवल स्थानीय लोगों के लिए बल्कि पूरे भारत और विश्व के लिए भी आकर्षण का केंद्र है।

•••

ओडिशा: एक झलक

सुश्री सुनीता देवी
कनिष्ठ अनुवादक

भारत–भूमि पर पूरब में स्थित राज्य अति पावन।
कला में श्रेष्ठ “उत्कल” राज्य की गाथा है मनभावन।
यहां पर दिव्य पूजा स्थलों की श्रृंखला–सी है।
यहां की धरित्री सदियों से मानो मंगला–सी है।
पावन धाम हो पुरी का या लिंगराज मंदिर हो।
चाहे वो सूर्य मंदिर हो या कि मुक्तेश्वर मंदिर हो।
सभी में दिव्यता उतनी, सभी में भव्यता भी है।
सभी में ही विराजित हर तरह के देवता भी हैं।
हो चौसठ योगिनी मंदिर, या तारा तारिणी मंदिर।
वो विमला देवी जी हों, या कि हो राजा–रानी मंदिर।
प्रकट होता यहां नारीत्व का अद्भुत नज़ारा है।
दिए आशीष हैं सब ने, हमें सबने दुलारा है।

कि मोहे मन आगंतुक का हैं अदभुत मूर्तियां ऐसी।
उकेरी पत्थरों पर दिव्य कलाकृतियां ऐसी
कि नक्काशी है इतनी सूक्ष्म, ये जग देखता जाए।
किया है काम ये कैसे, कि ये मन सोचता जाए।
प्रभु की दिव्य रथयात्रा से भला है कौन अपरिचित।
मनाते हर्ष और उल्लास से यह पर्व चिर–परिचित।।
जहां जाकर मनुज दारुण दुख भी भूल जाता है।
प्रभु की ऐसी महिमा है, प्रभु की ऐसी गाथा है।।

यहां के लोग हैं अति सरल और संतुष्ट अपने में।
लगाते हैं गले सबको, नहीं दुर्भाव है मन में।।
यहां के आदिवासी के बिना पूरा नहीं उत्कल।
ये खाते कंद मूल फल, पहनते हैं वसन वल्कल।।
इन्हीं से है सृजित यहां का हस्तशिल्प अनूठा।
चाहे तारकशी हो, चाहे टेराकोटा।।
यहां पारंपरिक परिधानों की फेहरिस्त लंबी–सी।
साड़ी बोमकाई, नुआपटना चाहे संबलपुरी की।।
कोटपाड़ भी यहीं की, इक्कत साड़ी यहीं की।
ये आती हैं पसंद सबको, चाहे हो नारी कहीं की।।

यहां के पर्वतों का यश पुराणों में भी वर्णित है।
इन्हीं की गोद में पलकर बढ़ी अनमोल संस्कृति है।
चाहे वो देवमाली हो या कि महेंद्र गिरि ही हो।
चाहे वो गंधमर्दन हो या कि मलया गिरि ही हो,
यहीं पर देउलि, ओलासुनी और चंद्रगिरि भी है।
यहीं पर “तप्तपानी” है, यहीं “दारिंगबाडी” भी है।।
प्रसिद्धि प्राप्त है इनको प्रकृति अनुकूल भक्ति को।
कि उगती हैं हजारों बूटियां, दें प्राणशक्ति को।।
अनेकों व्याधियां इन बूटियों से दूर होती हैं।
कि मूर्छित मानवों में प्राण शक्ति फूंक देती है।
इन्हीं से है हमारी शान और पहचान भी इनसे।
इन्हीं में प्राण हम सबका, होता कल्याण भी इनसे।।

चलो आगे बढ़े देखें यहां कुछ और भी तो है।
यहां मेंग्रोव वन के साथ अभ्यारण्य भी तो हैं।।
यहां की झील चिल्का को बनाया रामसर स्थल।
कि आते हैं प्रवासी खग यहां लेकर के अपना दल।।
बसेरा करते पूरे शरद, करते केलि क्रीड़ा भी।
बढ़ाते झील की रमणीयता को और ज्यादा ही।।
यहां की जैव विविधता अनूठे जाल बुनती है।
यहां की झील में इरावदी डाल्फिन मिलती है।

भला कैसे कोई भूले भितरकणिका के जंगल को।
जहां रहते "मगर" संतति करें संकेत मंगल को।
बड़ा वैविध्य पूर्ण है यहां का नंदन कानन भी।
अनेकों जीव-जंतु, पक्षियों का सुंदर कलरव भी।
यहीं ऋषिकुल्य, सिमली पाल की प्राकृतिक गाथा भी।
यहीं ब्रम्हाणी के नदमुख तले है गाहिर माथा भी।
यहीं पर ओलिव रिडले कच्छपों का दृश्य मनमोहक।
प्रणय को आ ही जाते हैं हजारों मील तक चलकर।।
यहां के जैव के वैविध्य को मन देख हर्षाए।
प्रकृति का ये करिश्मा है सभी के मन को भा जाए।।

अगर न हो यकीं तो आप भी आकर यहां देखें।
कि बैठें छांव में "एकाम्र" के एक बार तो सोचें।।
विचारें साथ मिल करके, करें प्रयास सामूहिक।
कि न हो नष्ट अपने राज्य की थाती महज़ आंशिक।।
कि वन हो या कि हो मंदिर कि या हो झील और नदियां।
कि ऊंचे गिरि हों या उन पर विराजित दिव्य औषधियां।।
हमें इनको संजोना है, तभी विकसित सभी होंगे।
कि गर ये ही नहीं होंगे तो हम सब भी नहीं होंगे।
यही संकल्प हो अपना, यही प्रतिबद्धता अपनी।
सदा यूं ही रहे सुमधुर, धरा ये पुण्य "उत्कल" की।।

●●●

ओडिशा : भारत की आत्मा

श्री मनीष कुमार
डीईओ

परिचय

ओडिशा एक ऐसी धरती है जहाँ इतिहास साँस लेता है, जहाँ परंपराएँ फलती-फूलती हैं और जहाँ रेत का हर कण अपनी विरासत की कहानी कहता है। पूर्व में उड़ीसा के नाम से जाना जाने वाला यह तटीय रत्न सिर्फ़ एक भौगोलिक इकाई से कहीं बढ़कर है। यह एक ऐसी धरती है जहाँ इतिहास, संस्कृति और प्रकृति एक अद्भुत संगीत में विलीन हो जाते हैं, जो भारत की शाश्वत आत्मा का जीवंत प्रमाण है। यह राज्य अपने प्राचीन मंदिरों, विशेष रूप से भुवनेश्वर और पुरी में और बंगाल की खाड़ी के किनारे स्थित अपने मनोरम तटरेखा के लिए जाना जाता है। कलिंग के गौरवशाली युद्धक्षेत्र से लेकर प्रगति के एक गतिशील केंद्र के रूप में अपनी आधुनिक भूमिका तक ओडिशा की कहानी लचीलेपन, सुंदरता और आध्यात्मिक गहराई से भरी है।

ओडिशा का इतिहास: कलिंग से आधुनिक राज्य तक

ओडिशा की जड़ें भारतीय इतिहास के पन्नों में गहरी हैं और इसकी उत्पत्ति प्राचीन कलिंग साम्राज्य से जुड़ी है। ऐतिहासिक रूप से ओडिशा को कलिंग और उत्कल के नाम से जाना जाता था। यहीं दया नदी के तट पर परिवर्तनकारी कलिंग युद्ध हुआ था, जिसने सम्राट अशोक के हृदय को गहराई से प्रभावित किया और उन्हें बौद्ध धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया। इस अनोखी घटना ने एक अमिट छाप छोड़ी और आध्यात्मिक आत्मनिरीक्षण की एक ऐसी परंपरा स्थापित की, जो आज भी प्रासंगिक है। सदियों से इस भूमि पर विभिन्न राजवंशों का शासन रहा है और प्रत्येक राजवंश ने स्थापत्य और कलात्मक वैभव की एक विरासत छोड़ी है। विशेष रूप से गंग राजवंश ने मंदिर निर्माण के स्वर्ण युग की शुरुआत की, जिसने भारत के कुछ सबसे प्रतिष्ठित स्मारकों को जन्म दिया, जिन्हें अब विश्व स्तर पर जाना जाता है। 2011 में आधिकारिक रूप से अपनाया गया "ओडिशा" नाम, अपनी विरासत और भाषा के प्रति नए गौरव को दर्शाता है, जो अपने अतीत का सम्मान करते हुए आधुनिक युग में एक आत्मविश्वासपूर्ण कदम का प्रतीक है। ओडिशा कभी प्राचीन कलिंग साम्राज्य का हिस्सा था, जिस पर सम्राट अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में आक्रमण किया था, जिसके परिणामस्वरूप कलिंग युद्ध हुआ। आधुनिक ओडिशा की स्थापना 1 अप्रैल 1936 को ब्रिटिश भारत में भाषाई आधार पर एक अलग प्रांत के रूप में हुई थी। इस दिन को उत्कल दिवस या ओडिशा दिवस के रूप में मनाया जाता है।

स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत

ओडिशा को "मंदिरों की भूमि" कहा जाता है। इसकी वास्तुकला कलिंग शैली का जीवंत उदाहरण है। इनमें सबसे प्रतिष्ठित कोणार्क सूर्य मंदिर है, जो 13 वीं शताब्दी की एक उत्कृष्ट कृति है जिसे सूर्य देव के विशाल रथ के रूप में कल्पित किया गया है। यह यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल है तथा इसकी जटिल नक्काशी और स्थापत्य कला की सूक्ष्मता आगंतुकों को चकित करती रहती है। हिंदू धर्म के चार धामों में से एक, पुरी का जगन्नाथ मंदिर भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जो एक जीवंत सांस्कृतिक संस्थान के रूप में कार्य करता है। "मंदिरों के शहर" के रूप में प्रसिद्ध भुवनेश्वर शहर, लिंगराज मंदिर जैसे सैकड़ों प्राचीन मंदिरों का घर है, जिनमें से प्रत्येक भक्ति और कला की एक कहानी कहती है। ओडिशा अद्वितीय कला रूपों, शास्त्रीय नृत्य ओडिसी और त्योहारों के साथ एक जीवंत संस्कृति का दावा करता है। यह राज्य अपने पारंपरिक हस्तशिल्प के लिए भी प्रसिद्ध है, जैसे कि जीवंत पट्टचित्र चित्रकारी, कटक की चांदी की बारीक नक्काशी और पुरी के समुद्र तटों को सुशोभित करने वाली अनूठी रेत की मूर्तियाँ।

प्रकृति का निवास: जैव विविधता का स्वर्ग

प्राकृतिक अजूबे न केवल राज्य के सौंदर्य पर्यटन में योगदान करते हैं बल्कि इसके इको-टूरिज्म पहलों की रीढ़ भी होते हैं, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए ओडिशा की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हैं। विविध और मनोरम परिदृश्य से धन्य, ओडिशा प्रकृति प्रेमियों के लिए एक अनन्य आकर्षण है। बंगाल की खाड़ी के साथ इसकी 480 किलोमीटर लंबी तटरेखा प्राचीन समुद्र तटों से युक्त है, जिसमें विश्व प्रसिद्ध गहिरमाथा समुद्र तट भी शामिल है, जो लुप्तप्राय ओलिव रिडले समुद्री कछुओं के लिए सबसे बड़ा सामूहिक घोंसला बनाने का स्थान है। यहाँ एशिया की सबसे बड़ी खारे पानी की लैगून, चिल्का झील भी है, जो प्रवासी पक्षियों और दुर्लभ इरावदी डॉल्फिन के लिए एक महत्वपूर्ण आवास है। पूर्वी घाट राज्य को पार करते हुए हरे-भरे जंगल, प्रपातों और वनस्पतियों और जीवों की एक समृद्ध विविधता प्रदान करते हैं।

कृषि, उद्योग और खाद्य सुरक्षा

यद्यपि इस राज्य का इतिहास और संस्कृति अद्वितीय हैं तथापि ओडिशा की असली ताकत इसके आधुनिक आर्थिक पुनरुत्थान में भी निहित है। पारंपरिक रूप से एक कृषि प्रधान राज्य ओडिशा, चावल का एक प्रमुख उत्पादक है, जिसने इसे "पूर्वी भारत का चावल का कटोरा" की उपाधि दी है। यह कृषि कौशल राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा की आधारशिला है। भारतीय खाद्य निगम (FCI), अपने खरीद केंद्रों और भंडारण गोदामों के विशाल नेटवर्क के साथ इस परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर अधिशेष धान की खरीद करके, भारतीय खाद्य निगम (FCI) ग्रामीण आबादी के लिए एक स्थिर आय सुनिश्चित करता है और राज्य की आर्थिक स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देता है। राज्य के किसानों और भारतीय खाद्य निगम (FCI) जैसे राष्ट्रीय संगठन के बीच यह साझेदारी देश की खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में ओडिशा के महत्वपूर्ण योगदान को उजागर करती है। यह सुनिश्चित करती है कि इसकी उपजाऊ भूमि का लाभ पूरे देश के नागरिकों तक पहुँचे ।

निष्कर्ष

राज्य में तटीय मैदानों, पहाड़ियों और जंगलों के साथ एक विविध परिदृश्य है। संक्षेप में, ओडिशा स्वयं भारत का एक लघु रूप है-प्राचीन होते हुए भी दूरदर्शी, पारंपरिक होते हुए भी प्रगतिशील। यह एक ऐसा राज्य है जिसने इतिहास से सबक से सीखा है और अब सक्रिय रूप से अपना भविष्य गढ़ रहा है। पुरी की लहरों की लयबद्ध ध्वनि, कोणार्क के पत्थरों द्वारा फुसफुसाती मूक कहानियाँ और इसके आधुनिक शहरों का जीवंत जीवन, ये सभी एक ऐसे राज्य की कहानी कहते हैं, जो अपनी विरासत में निहित है और नए क्षितिज की ओर बढ़ रहा है। जैसे-जैसे इसकी सांस्कृतिक धरोहर संरक्षित होती है और इसकी आर्थिक क्षमता साकार होती है, ओडिशा राष्ट्रीय गौरव के एक शक्तिशाली प्रतीक के रूप में उभरता रहता है। इसकी आत्मा अपने मंदिरों जितनी प्राचीन और अपने पवित्र तट पर उगते सुबह के सूरज जितनी ताज़ा है। इस प्रकार ओडिशा को "भारत की आत्मा, प्राचीन होते हुए भी नित्य नवीन" माना जाता है।

•••

मैं हिंदी का प्रेमी हूँ। सांस्कृतिक जीवन में हिंदी के महत्व को भली-भांति समझता हूँ।
भारतीय एकता का मुख्य साधन हिंदी बन चुकी है।
- डा. सुनीति कुमार चटर्जी

पूरब का सूरज

श्री अभिषेक कुमार
सहायक लेखा अधिकारी

ओडिशा की कला एवं संस्कृति भारत रूपी आकाश में पूरे तेज से चमकता हुआ सूर्य है और मेरा ज्ञान "छोटा सा दिया", अर्थात् मैं इसकी पूर्ण व्याख्या कर सकने में तो समर्थ नहीं हूँ परंतु अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ओडिशा की कला एवं संस्कृति के बारे में चर्चा अवश्य करना चाहूँगा।

ओडिशा को मैं "पूरब का सूरज" की संज्ञा से विभूषित करना चाहूँगा क्योंकि जिस प्रकार पूर्व दिशा में उगता हुआ सूर्य अंधकार को दूर करता है और अपने सौम्य तेज से प्रकृति के प्रत्येक जीव-जंतु को सुख पहुँचाता है, उसी प्रकार ओडिशा की अद्भुत कला एवं संस्कृति लोगों को सुख प्रदान करती है वो भी बिना किसी आत्माभिमान के। न तो दूसरी संस्कृति का अनादर और न ही खुद को सर्वश्रेष्ठ बताने का दंभ, ओडिशा की संस्कृति में सहजता है।

"संस्कृति" शब्द का अर्थ है किसी समाज या समूह के साझा मूल्यों, विश्वासों, प्रथाओं, कला, साहित्य, संगीत, रीति-रिवाज और जीवन-शैली का समग्र स्वरूप। ओडिशा की सांस्कृतिक विशेषताओं में जो उल्लेखनीय बातें मुझे प्रभावित करती हैं, वह निम्न प्रकार हैं:-

1. शास्त्रीय भाषा ओडिया: ओडिया भाषा एक समृद्ध भाषा है, जिसकी अपनी लिपि है और शास्त्रीय (Classical) भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह भारत की 22 संसदीय भाषाओं में से एक है। जब मैं ओडिशा में रहने आया तभी से मुझे ओडिया भाषा में रूचि है और मैंने यथा संभव इस भाषा को सीखा भी है।

भाषा संबंधी कोई विरोधाभास या अन्य भारतीय भाषा-भाषी से किसी प्रकार का भेद-भाव मैंने यहाँ अभी तक नहीं देखा है। यहाँ के लोग हिंदी में पूछे पते, सवालों आदि का हिंदी में बड़े ही उत्साह से जवाब देते हैं। उन्नत भाषा संस्कृति होने के बावजूद हिंदी के प्रति ओडिया जनमानस का लगाव उल्लेखनीय है तथा ऐसे राज्यों के लिए अनुकरणीय है जहाँ भाषा के नाम पर गरीबों का उत्पीड़न होता है। यहाँ के लोगों में भाषा संबंधी अहंकार नहीं है। हिंदी में बातें करते हुए यहाँ के लोगों में गर्व का भाव मैंने देखा है।

2. क्षेत्रीयता की भावना का अभाव: मैंने यहाँ प्राय: क्षेत्रीय स्व-प्रधानता का अभाव पाया है। यहाँ के लोग गर्व से एक भारत की भावना को पुष्ट करते हैं तथा अन्य राज्यों से आए लोगों के प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं रखते हैं। पूरे भारत को यहाँ की इस विशेषता का अनुसरण करना चाहिए।

3. धर्म-प्राण क्षेत्र: मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि भारत के किसी भी अन्य राज्यों की तुलना में ओडिशा कहीं अधिक धार्मिक क्षेत्र है। यहाँ साल के 365 दिनों से भी ज्यादा त्योहार हैं और यहाँ के लोग बड़े ही आदर और उल्लास के साथ सनातन संस्कृति का उत्सव मनाते हैं। यहाँ "सर्वे भवन्तु सुखिन:..." का स्वर प्रत्येक मंदिर से सुनाई देता है। यहाँ धर्म धरातल पर दिखता है। हर महीने की संक्रांति उत्सव, आश्विन मास का लक्ष्मी पूजा, कार्तिक मास का एक महीने का व्रत नियम, पूरी की जगन्नाथ रथ यात्रा उत्सव- यहाँ हर साल वैश्विक रिकॉर्ड बनाता है। रथ यात्रा पुरी सहित ओडिशा के हर प्रमुख मंदिर में निकाली जाती है। इस दौरान पूरे ओडिशा का वातावरण आध्यात्मिक उर्जा से भर जाता है। धर्म-प्राण क्षेत्र होने के कारण लोगों में मानवीय गुण बहुतायत मात्रा में देखने को मिलता है क्योंकि सनातन संस्कृति कभी किसी के अहित की बात नहीं करता है।

4. शांतिप्रिय सामाजिक व्यवस्था: ओडिशा की पावन भूमि पर निवास करते हुए मुझे पूरे 12 वर्ष हो गए हैं परंतु मैंने यहाँ हिंसक झगड़े अपवाद के रूप में केवल दो बार ही देखे

हैं। यहाँ का समाज धर्म से जुड़ा होने के कारण परोपकारी है, न कि स्वार्थी और झगड़ालू। शायद इसीलिए यहाँ अपेक्षाकृत कम अपराध है। चोरी, डकैती, हत्या आदि की घटनाएं भी कम हैं। अधिकांश लोग भगवान जगन्नाथ को साक्षी भाव से देखते हैं। एक बार जब मैं सब्जी खरीदते हुए छः मूली गिनकर सब्जी वाले भैया को दिखा रहा था कि देख लो छः ही हैं, तो उन्होंने कहा कि हम क्या देखें जगन्नाथ जी सब देखते रहते हैं। सुनने में यह घटना सामान्य लग सकती है परंतु ऐसी निश्चिंतता का भाव प्राप्त कर लेना भी बहुत पढ़े-लिखे लोगों के लिए भी दुष्कर है।

5. जातिवाद का अभाव: ओडिशा की संस्कृति में जातिवादी कट्टरता या द्वेष का प्राय: अभाव है। अनेक जातियाँ आपस में एक-दूसरे का सम्मान करते हुए खुशहाल और शांतिपूर्ण जीवन जीते हैं। ओडिशा के प्राण भगवान जगन्नाथ के मंदिर से ही जातिवाद और छूआ-छूत की कुव्यवस्था का खंडन किया गया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव यहाँ के सामाजिक जीवन पर दिखता है।

6. आधुनिक होता वनवासी समाज: ओडिशा की कुल जनसंख्या का 22.85% वनवासी जनसंख्या है, जहाँ 62 प्रकार के आदिवासी समुदाय निवास करते हैं। यहाँ की आदिवासी संस्कृति मानव और प्रकृति के अभिन्न संबंध का सटीक चित्रण करती है। आधुनिकता के साथ-साथ प्रकृति से जुड़ाव का एक उन्नत उदाहरण यहाँ का आदिवासी समाज है। मूल बीजों तथा पौधों के संरक्षक भी वनवासी समाज है। आदिवासी मेलों के माध्यम से जैविक खेती के उत्पाद के महत्व को लोगों तक पहुँचाया जा रहा है।

7. मंदिरों की संस्कृति:- आप जो करते हैं और जो बनाते हैं, वही आपके व्यक्तित्व की परिभाषा तय करती है। ओडिशा के लोगों के व्यक्तित्व की परिभाषा मंदिर है और ओडिशा का मन भी मंदिर है। ओडिशा अपने कालजयी मंदिरों के लिए विश्व विख्यात है। यहाँ जगह-जगह मंदिर होना आम बात है परंतु यह आम बात नहीं है, यही तो यहाँ की खास बात है। पौराणिक मान्यताओं एवं वैज्ञानिक कसौटी के आधार पर यह सिद्ध होता है कि विभिन्न मंदिरों के गर्भ-गृह की रचनाएँ वास्तु विशेष उर्जा से प्राण-प्रतिष्ठित होती है और इसका मानव के तन-मन पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मंदिर एक साधारण आदमी को उस परम अवस्था से जोड़ने का माध्यम है, जिसे हम भगवान कहते हैं। मंदिर "स्वयं" के सिद्धांत पर नहीं बल्कि "सर्व" के दर्शन पर आधारित एक केंद्र है जो मुक्ति का द्वार है जहाँ प्रकृति के हर जीव को स्वीकृति है।

यहाँ के युग पुरूषों के द्वारा स्थापित अद्भुत स्थापत्य कला आज भी लाखों जनमानस को अपेक्षित धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है।

8. ओड़िया खान-पान की संस्कृति: जब मैंने पहली बार अनंत वासुदेव मंदिर का प्रसाद जिसे "अबरा या अर्ण" कहा जाता है खाया था तो वह भोजन के मामले में अनोखा एहसास था। जब मैंने एक मठ में जगन्नाथ मंदिर का महाप्रसाद खाया था तो वह भी एक ऐसा ही कभी न भूलने वाला अनुभव था। जगन्नाथ मंदिर की रसोई विश्व की सबसे बड़ी रसोई है, जहाँ पारंपरिक तरीके का उपयोग करके मिट्टी के बर्तनों में बिना किसी प्रोसेस्ड मसाले और रिफाईन आदि के, 56 भोग बनाया जाता है। इस प्रसाद को बनाते समय लगड़ी के जलावन का प्रयोग किया जाता है। प्रसाद में टमाटर, गोभी, आलू जैसे सब्जियों का प्रयोग नहीं होता क्योंकि आज के डॉक्टर भी कुछ विशेष रोग के मरीजों को इस सब्जियों को खाने से मना करते हैं अर्थात् यहां का प्रसाद सभी के लिए पौष्टिक और स्वास्थ्य वर्धक होता है।

9. मातृ शक्ति उचित आदर करने वाली संस्कृति : यहाँ छोटी बच्चियों को भी माँ या ममा कहकर दुलार से संबोधित किया जाता है तथा उम्र में बड़ी महिलाओं को मऊसी (मासी) कहकर संबोधित किया जाता है। मेरे 12 वर्ष के अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि यहाँ का पुरुष वर्ग महिलाओं का सम्मान करते हैं।

10. ओड़िया कला : ओडिशा की कला में कपड़े या ताड़ के पत्ते पर धार्मिक कथाओं को दर्शाने वाले पट्टचित्र बहुत प्रसिद्ध है। ओडिशा की वास्तुकला खासकर कालजयी मंदिरों की वास्तुकला विश्व प्रसिद्ध है। पत्थरों की मूर्तिकला भी प्राचीन काल से अब तक काफी सराहनीय है। चांदी की तारकशी तथा आदिवासी समाज के द्वारा बनाए हस्तशिल्प भी प्रमुख हैं।

ओडिशा की कला एवं संस्कृति अत्यंत ही विकसित तथा समाज का उत्थान करने वाली है। ओड़िया संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक विविधता का एक अभिन्न अंग है तथा वैश्विक पटल पर भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाला है।

●●●

कला एवं संस्कृति की भूमि:ओडिशा

सुश्री रूपा कुमारी
वरिष्ठ अनुवादक

"कलिंग" की धरती, ओडिशा भारत का एक ऐसा राज्य है जिसकी कला, संस्कृति, स्थापत्य, संगीत और नृत्य में हजारों वर्षों की परंपरा समाहित है। यह राज्य न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी अत्यंत समृद्ध है। इसकी विविध लोक कलाएं, मंदिर, स्थापत्य-कला, पारंपरिक नृत्य, हस्तशिल्प, संगीत, लोकगाथाएं और त्योहार इसकी सांस्कृतिक विरासत को दर्शाते हैं। ओडिशा की संस्कृति एक जीवंत संग्रहालय के समान है जिसमें प्राचीनता और आधुनिकता का अद्वितीय समन्वय देखने को मिलता है।

1. स्थापत्य कला

मंदिरों के राज्य ओडिशा की स्थापत्य कला विश्व प्रसिद्ध है, विशेषकर उसके मंदिरों की स्थापत्य को देखकर कोई व्यक्ति आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकता। यहाँ के मंदिरों में पत्थर पर की गई नक्काशी, प्रतीकात्मकता और धार्मिक भावना को अत्यंत कलात्मकता से अभिव्यक्त किया गया है।

- **कोणार्क का सूर्य मंदिर:** 13वीं शताब्दी में निर्मित यह मंदिर सूर्य देव को समर्पित है। रथ के आकार में बने इस मंदिर में बारह जोड़ी विशाल पत्थर के चक्र और सात घोड़े सूर्य देव के रथ को दर्शाते हैं। इसे यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थल का दर्जा प्राप्त है।
- **लिंगराज मंदिर (भुवनेश्वर):** 11वीं सदी में सोमवंशी राजा जजाति प्रथम द्वारा बनवाये गये लिंगराज मंदिर में शिव के "हरिहर" स्वरूप अर्थात् "हरि" यानी भगवान विष्णु और "हर" यानी भगवान शिव की पूजा-अर्चना एक साथ तुलसी एवं बेलपत्र अर्पित कर होती है। यह मंदिर ओडिशा में शैव और वैष्णव संप्रदायों के समन्वय का प्रतीक है। कलिंग स्थापत्यकला का उत्कृष्ट उदाहरण लिंगराज मंदिर ओडिशा की ऐतिहासिक एवं धार्मिक धरोहर भी है।
- **जगन्नाथ मंदिर (पुरी):** यह भारत के चार धामों में से एक है। धार्मिक महत्ता के साथ-साथ यह ओडिशा की संस्कृति का केंद्र बिंदु भी है। यहां की "रथ यात्रा" की विश्वभर में प्रसिद्धि का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इस अवसर पर न केवल भारत बल्कि विदेशों में भी रथयात्रा निकाली जाती है।

2. नृत्य कला

ओडिशा की नृत्य परंपरा में सबसे प्रमुख है-ओडिसी नृत्य, जो भारत के शास्त्रीय नृत्यों में एक है। यह नृत्य शैली विशेष रूप से मंदिरों में देवताओं की आराधना के रूप में विकसित हुई थी।

- इसकी जड़ें नाट्यशास्त्र में पाई जाती हैं।
- नर्तक/नर्तकियां विशेष मुद्रा (त्रिभंगी और चौक) में नृत्य करते हैं।
- इसमें भाव (अभिनय), राग, ताल और गति का अद्भुत संयोजन होता है।
- यह नृत्य शैली भगवान श्री जगन्नाथ की आराधना से गहराई से जुड़ी हुई है।

इसके अतिरिक्त अन्य लोकनृत्यों की भी विविधता है जैसे घुमरा, छाऊ, धलखाई, गोटीपुआ आदि जो त्योहारों एवं अनुष्ठानों में प्रदर्शन के लिए किए जाते हैं।

3. चित्रकला और लोककला

ओडिशा की चित्रकला पारंपरिक, प्रतीकात्मक और धार्मिक भावना से युक्त होती है। यहाँ की कुछ प्रमुख कलाएं निम्नलिखित हैं:

पट्टचित्र चित्रकला:

- यह ओडिशा की प्रसिद्ध पारंपरिक चित्रकला है जो कपड़े (पट्ट) या ताड़पत्रों पर बनाई जाती है।
- यह चित्रकला भगवान श्री जगन्नाथ, राधा-कृष्ण, रामायण एवं महाभारत की कथाओं पर आधारित होती है।

- चित्रों में लाल, पीला, हरा, नीला जैसे प्राकृतिक रंगों का प्रयोग होता है।

"सहस्त्राक्षी" और "ताड़पत्र" चित्रकला:

- सहस्त्राक्षी चित्रकला ओडिशा की एक प्राचीन और विशिष्ट पारंपरिक चित्रकला शैली है, जो अपनी जटिलता, सूक्ष्मता और विस्तृत विवरण के लिए प्रसिद्ध है। "सहस्त्राक्षी" शब्द का अर्थ है "हजारों आँखें", जो इस कला की बारीकी और विस्तारपूर्ण दृष्टि को दर्शाता है। यह कला शैली मुख्यत: मंदिरों की दीवारों, पारंपरिक वस्त्रों, पत्तों और कागज पर की जाती है।
- ताड़पत्र चित्रकला ओडिशा की एक प्राचीन पारंपरिक कला है जिसमें ताड़ के पत्तों (पाम लीफ) पर कलात्मक चित्र और लेखन किया जाता है। यह कला प्राचीन भारतीय ग्रंथों के लेखन और चित्रण का एक महत्वपूर्ण माध्यम रही है। ताड़पत्रों को पहले विशेष प्रकार से सुखाया और तैयार किया जाता है, फिर ताड़पत्र पर बारीक नक्काशी कर सुंदर चित्र बनाए जाते हैं। यह चित्रकला मुख्यत: धार्मिक ग्रंथों और मिथकीय आख्यानों को निरूपित करती है।

4. हस्तशिल्प और कारीगरी

ओडिशा की हस्तशिल्प परंपरा सदियों पुरानी है। यहाँ के कारीगर पारंपरिक तकनीकों से सुंदर कलाकृतियाँ बनाते हैं। प्रमुख हस्तशिल्प कलाएं निम्नलिखित हैं:

- **धातु कला (धोकरा कला):** यह आदिवासी कला रूप है जिसमें पीतल या कांसे से मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। यह खोई हुई मोम की विधि (lost-wax method) पर आधारित है।
- **पत्थर नक्काशी (स्टोन कार्विंग):** ओडिशा के मंदिरों की मूर्तियों से इसकी उत्कृष्टता स्पष्ट होती है। आज भी पुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर में यह जीवंत कला के रूप में प्रचलित है।
- **एप्लीक कला (चिकनकारी या रथ छाया):** यह कपड़ों पर कढ़ाई और सजावटी पैचवर्क की कला है, विशेषकर पुरी की रथ यात्रा के दौरान यह प्रमुख रूप से प्रयोग में आती है। कपड़े के साथ किए जाने वाले एप्लीक में कपड़े की एक परत को दूसरे पर रखना और फिर उसे सिलना शामिल है। एप्लीक आर्ट वर्क में इस्तेमाल की जाने वाली चीजें जैसे धातु के टुकड़े, कांच के टुकड़े या रंगीन रत्न भी कपड़े पर इसी तरह से सिले जाते हैं। यह कला का वह रूप है जिसे मूल रूप से पेशेवर दर्जी की एक विशेष जाति द्वारा किया जाता है। पहले एप्लीक-कला का इस्तेमाल राजाओं और शाही लोगों द्वारा किया जाता था।
- **रेत कला:** यह एक अद्वितीय प्रकार की कला है जो दुनिया भर में जानी जाती है, जिसे पुरी में विकसित किया गया है। रेत की मूर्ति बनाने के लिए पानी में मिश्रित साफ़ रेत की आवश्यकता होती है। इस प्रकार रेत की मदद और आकृतियों के जादू से कलाकार पुरी के समुद्र तट पर सुंदर और आकर्षक मूर्तियां बनाते हैं। पत्थर की मूर्तिकला को रेत कला का पहला चरण माना जाता है। रेत पर नक्काशी करना, कठोर पत्थर पर नक्काशी करने की तुलना में अधिक आसान और तेज है। पर्यटन क्षेत्र में विकास के साथ, इस अद्भुत कला रूप को भी उच्च प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त हुई है।
- पुरी-कोणार्क मरीन ड्राइव पर स्थित सुदाम सैंड आर्ट म्यूजियम कला और खास तौर पर रेत कला के पारखी लोगों के लिए एक बेहतरीन जगह है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध रेत कलाकार सुदाम प्रधान द्वारा स्थापित यह दुर्लभ रेत कला संग्रहालय विभिन्न थीम और शैलियों के 3D रेत कला मॉडल का घर है। पर्यटक संग्रहालय में ऐतिहासिक महानुभावों, स्मारकों, हिंदू देवताओं और यहां तक कि लोकप्रिय एनिमेटेड पात्रों की शानदार रेत की मूर्तियां देख सकते हैं।
- यहां की संबलपुरी साड़ी हस्तशिल्प एवं परंपरा के मिश्रण के रूप में देखी जा सकती है।

5. साहित्य और भाषा

ओडिशा की प्रमुख भाषा ओड़िया है, जो भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित एक समृद्ध भाषा है। यह भारत की पहली ऐसी क्षेत्रीय भाषा बनी जिसे वर्ष 2014 में शास्त्रीय भाषा का दर्जा मिला।

- सरला दास (15वीं सदी) को ओड़िया साहित्य का आदि कवि कहा जाता है। उन्होंने ओड़िया महाभारत की रचना की। आधुनिक काल में ओड़िया साहित्य में उपन्यास, नाटक, लघुकथा और आलोचना के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान हुआ है।

- तीसरी कक्षा तक शिक्षित एवं पद्मश्री से सम्मानित कवि हलधर नाग अपनी कोसली कविताओं के लिए "रत्न कवि" माने जाते हैं और उनकी ओड़िया कविताएं संबलपुर विश्वविद्यालय में अब पीएचडी के पाठ्यक्रम में शामिल हैं।

6. संगीत

ओडिशा का ओड़िया संगीत मुख्यतः मंदिरों से जुड़ा हुआ है। ओडिसी संगीत शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में आता है।

- इसमें गायन के प्रमुख रूप हैं, चंडीपाठ, गीत गोविंद, चर्जा गीत इत्यादि।
- मर्दल, बंसी, ताला जैसे पारंपरिक वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है।
- भक्ति संगीत के अतिरिक्त लोकगीतों में धलखाई गीत, कंदन गीत, झूमर, कुई आदि प्रमुख हैं।

7. त्योहार और उत्सव

ओडिशा की संस्कृति में त्योहारों का विशेष महत्व है। यहाँ के त्योहार धार्मिक, सामाजिक और कृषि परंपराओं से गहराई से जुड़े हुए हैं।

प्रमुख त्योहार:

- **रथ यात्रा (पुरी):** भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की भव्य रथ यात्रा जो जून-जुलाई में आयोजित होती है।
- **दुर्गा पूजा और काली पूजा:** विशेष रूप से कटक और भुवनेश्वर में भव्य रूप में मनाई जाती हैं।
- **रज पर्व:** यह तीन दिन का पर्व होता है, जिसमें स्त्रीत्व, मातृत्व और धरती की उर्वरता का उत्सव मनाया जाता है।
- अशोकाष्टमी, शिवरात्री, चंदन-यात्रा, मकर संक्रांति, होली, दीपावली भी पूरे उल्लास से मनाए जाते हैं।

8. जनजातीय संस्कृति

ओडिशा में लगभग 64 जनजातियां निवास करती हैं, जिनमें कोंध, सांवरा, गोंड, भुइयां, बोंडा, बैगा आदि प्रमुख हैं। इन जनजातियों की अपनी विशिष्ट जीवनशैली, नृत्य, संगीत, परिधान और पूजा-पद्धतियां होती हैं।

- बोंडा जनजाति की महिलाएं अपने पारंपरिक गहनों और वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध हैं।
- जनजातीय कला, चित्रकला, लकड़ी शिल्प और दीवार चित्रांकन ओडिशा की संस्कृति में विशेष स्थान रखते हैं।

9. खानपान संस्कृति

ओडिशा का पारंपरिक भोजन सादा, स्वास्थ्यवर्धक और स्वादिष्ट होता है। यहाँ की सबसे प्रसिद्ध मिठाई है छेना पोड़ा, जो छेना (पनीर) से बनी होती है।

- जगन्नाथ मंदिर में तैयार होने वाला पुरी का महाप्रसाद अत्यंत प्रसिद्ध और धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।
- **अन्य व्यंजन:** दालमा, संतुला, पखाल भात (भीगा हुआ चावल), माछ भात (मछली चावल) आदि।

10. आधुनिक सांस्कृतिक विकास

ओडिशा आज भी अपनी परंपराओं को संजोकर आधुनिकता के साथ संतुलन बना रहा है। यहाँ के विश्वविद्यालय, कला अकादमियाँ, संग्रहालय और सांस्कृतिक उत्सवों के माध्यम से युवा पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़े रखने का प्रयास किया जा रहा है। भुवनेश्वर और कटक जैसे शहर अब सांस्कृतिक एवं शैक्षिक गतिविधियों के केंद्र बन गए हैं। स्वतंत्रता के बाद से राज्य में शिक्षा, कला, साहित्य और सांस्कृतिक संस्थानों के विकास ने आधुनिक सांस्कृतिक चेतना को बढ़ावा दिया है। यहाँ के नाट्य, संगीत और नृत्य जैसे शास्त्रीय एवं लोक कलाओं में नयापन का प्रयोग देखने को मिला है। साथ ही, टेक्नोलॉजी और मीडिया के माध्यम से ओडिशा की सांस्कृतिक धरोहर को संजोकर युवा पीढ़ी तक पहुँचाने के प्रयास तेज हुए हैं। ओडिशा का आधुनिक सांस्कृतिक विकास पारंपरिक मूल्यों के संरक्षण के साथ नवाचार और वैश्वीकरण की दिशा में भी अग्रसर है।

ओडिशा की कला एवं संस्कृति न केवल इस प्रदेश की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को उजागर करता है, बल्कि समग्र भारतीय सांस्कृतिक विरासत में इसका महत्वपूर्ण योगदान भी है। ओडिशा की शास्त्रीय नृत्य-शैली "ओडिसी", भव्य मंदिर वास्तुकला, विविध लोककलाएँ और धार्मिक अनुष्ठान यहाँ की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रमाण हैं। यह प्रदेश अपने ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक ताने-बाने के माध्यम से कला को न केवल संरक्षित करता है, बल्कि उसे युगों-युगों तक जीवंत बनाए रखने में भी सफल रहा है। अतः ओडिशा की कला एवं संस्कृति का यह संगम न केवल सामाजिक-सांस्कृतिक समरसता का द्योतक है बल्कि भारतीय संस्कृति की बहुमुखी और जीवंत प्रकृति का सशक्त प्रतिबिंब भी है। ऐसे में ओडिशा की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षण और संवर्द्धन देना आवश्यक है, जिससे यह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा और गौरव का स्रोत बना रहे।

●●●

ओडिशा: कला की भूमि, संस्कृति की कहानी

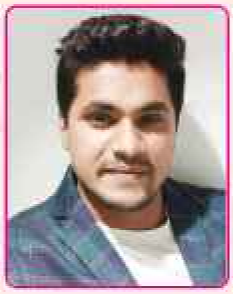

श्री विनोद कुमार

लेखाकार

भारत विविधताओं का देश है, जहाँ प्रत्येक राज्य अपनी अनूठी पहचान, संस्कृति, परंपरा और कलाओं के लिए प्रसिद्ध है। इसी श्रृंखला में ओडिशा एक ऐसा राज्य है जो अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर, समृद्ध कलाओं, अद्भुत शिल्पकला, शास्त्रीय नृत्य और धार्मिक परंपराओं के लिए संपूर्ण देश और विश्व में प्रसिद्ध है। पूर्वी भारत में स्थित ओडिशा का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैभव इतना विशाल है कि इसकी झलक मंदिरों, त्योहारों, नृत्य, संगीत, लोककला और जनजीवन के हर पहलू में देखने को मिलती है।

इतिहास और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

ओडिशा का इतिहास हज़ारों वर्षों पुराना है। प्राचीन काल से मध्य काल तक ओडिशा राज्य को कलिंग, उत्कल, तथा ओड्र आदि के नाम से जाना जाता था। मध्यकाल के बाद इसका नाम "उड़ीसा" पड़ा जिसे, आधिकारिक रूप से 04 नवम्बर 2011 को "ओडिशा" नाम में परिवर्तित कर दिया गया। यहाँ की आधिकारिक और सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा "ओडिया" है।

यह क्षेत्र महान सम्राट अशोक, खारवेल और गंगावंश के राजाओं की भूमि रही है। ओडिशा के इतिहास में बौद्ध, जैन और हिन्दू संस्कृतियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। सम्राट अशोक ने 261 ई.पू. में कलिंग युद्ध के बाद हिंसा का मार्ग त्यागकर बौद्ध धर्म अपना लिया और अहिंसा तथा धर्म प्रचार का मार्ग चुना जिससे बौद्ध धर्म का अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार हुआ, जिसने आगे चलकर इस क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान को गहराई दी।

ओडिशा की कला

1. चित्रकला:

ओडिशा की चित्रकला भारत की प्राचीन और समृद्ध कलाओं में से एक है, जो अपने पारंपरिक शैली, धार्मिक भावनाओं और जीवंत रंगों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के चित्रकला में पौराणिक तथा देवी-देवताओं की कथाएं और लोकजीवन की झलक देखने को मिलती है। यहाँ की प्रमुख चित्रकलाओं के विवरण कुछ इस प्रकार हैं :

पट्टचित्र

यह ओडिशा की सबसे प्रसिद्ध पारंपरिक चित्रकला है, जो कपड़े, ताड़-पत्र, या कागज़ पर बनाई जाती है। इसका नाम "पट्ट" (कपड़ा) और "चित्र" (चित्र) से मिलकर बना है। यह कला भगवान जगन्नाथ, कृष्ण लीला, रामायण, महाभारत और देवी-देवताओं की कथाओं को चित्रित करती है।

ताड़पत्र या तालपत्र चित्रकला

इस शैली में ताड़ के सूखे पत्तों पर खुदाई करके चित्र बनाए जाते हैं और फिर उन्हें काली स्याही से भरा जाता है। ये चित्र धार्मिक ग्रंथों, कथाओं और प्राकृतिक दृश्यों को चित्रित करते हैं।

झोंड़ी और मांडा चित्रकला

यह चित्रकला विशेष रूप से महिलाओं द्वारा धार्मिक और सांस्कृतिक अवसरों पर घरों की दीवारों और आँगनों में बनाई जाती है। इसे बनाने के लिए विशेष तौर पर प्राकृतिक रंगों जैसे आटा, हल्दी, सिन्दूर और मिट्टी का उपयोग किया जाता है। इसमें लोककथाओं, त्योहारों और जीवन से जुड़ी घटनाओं को भी दर्शाया जाता है।

2. मूर्तिकला और स्थापत्य कला:

कोणार्क सूर्य मंदिर - यह मंदिर स्थापत्यकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह 13वीं सदी में बना रथ के आकार में निर्मित सूर्य मंदिर है, जिसमें 12 जोड़े पत्थर के पहिए हैं और इसे 7 घोड़ों को खींचते हुए दिखाया गया है। मंदिर की दीवारों पर देवी-देवताओं, नर्तकियों और संगीतकारों की बारीक़ नक्काशी

है। इसकी अद्भुत वस्तुकला को देखते हुए इसे वर्ष 1984 में यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल में शामिल किया गया।

पुरी का जगन्नाथ मंदिर:

पुरी में स्थित जगन्नाथ मंदिर न केवल आस्था का प्रतीक है बल्कि अद्भुत वास्तुकला, चमत्कारी घटनाओं और भक्ति भावना से परिपूर्ण एक अलौकिक धार्मिक स्थल है। यह मंदिर विष्णु भगवान के अवतार भगवान जगन्नाथ, उनके भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा को समर्पित भारत के चार धामों में से एक है। यहाँ प्रत्येक वर्ष जून-जुलाई के महीने में मनाया जाने वाला रथ यात्रा उत्सव विश्वप्रसिद्ध है, जिसमें लाखों श्रद्धालु भारत के कोने-कोने से शामिल होने आते हैं।

लिंगराज मंदिर :

भुवनेश्वर में स्थित लिंगराज मंदिर एक प्राचीन और भव्य शिव मंदिर है, जिसका निर्माण 11वीं शताब्दी में कराया गया है। यह मंदिर कलिंग स्थापत्य शैली में निर्मित भगवान शिव के एक विशेष रूप "हरिहर" को समर्पित है, जिसे भगवान शिव और विष्णु का संयुक्त रूप माना जाता हैं ।

उदयगिरि और खंडगिरि की गुफाएँ

ये गुफाएँ चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं जो जैन स्थापत्य, मूर्तिकला और उस समय की वास्तुकला का अनुपम उदाहरण हैं। उदयगिरि और खंडगिरी में कुल 33 गुफाएँ हैं जिनमें कुछ प्रमुख हैं, जैसे: हथिगुम्फा, रानिगुम्फा और गणेशगुम्फा।

3. हस्तशिल्प और शिल्पकला :

धोकरा कला- धोकरा या धातु शिल्प एक प्राचीन परंपरा है, जिसमें पीतल और कांस्य से मोम ढलाई तकनीक का प्रयोग करके मानव आकृतियाँ, पशु, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और घरेलू उपयोग की वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

लकड़ी की नक्काशी - ओडिशा की लकड़ी की नक्काशी प्रसिद्ध है, विशेषकर रथ यात्रा में प्रयुक्त रथों की सजावट, मंदिरों के दरवाजे और खंभों में।

रघुराजपुर - पुरी जिले का रघुराजपुर गाँव ओडिशा का जीवंत विरासत वाला गाँव है और देखा जाए तो ये केवल एक गाँव नहीं बल्कि ओडिशा की जीवित कला गाथा है। यह गाँव विशेष रूप से अपनी पट्टचित्रकला, पारंपरिक हस्तशिल्प और लोकनृत्य के लिए जाना जाता है। यह भारत का एकमात्र ऐसा गाँव है जहाँ प्रत्येक घर किसी न किसी कला या शिल्प से जुड़ा है। वर्ष 2000 में, भारतीय राष्ट्रीय कला एवं सांस्कृतिक विरासत न्यास (INTACH) ने रघुराजपुर को एक "विरासत गाँव" घोषित किया, जिससे कलाकारों को अन्य पारंपरिक कला की शैलियों को भी जानने में मदद मिली।

ओडिशा की संस्कृति:

1. भाषा और साहित्य

ओड़िया भाषा - ओड़िया, ओडिशा की राजभाषा है और इसकी लिपि भी ओड़िया ही है जो कि ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है। यह भाषा भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल है और वर्ष 2014 में इसे "शास्त्रीय भाषा" का दर्जा भी प्राप्त हुआ है।

ओड़िया साहित्य - ओडिशा का साहित्य बहुत समृद्ध है, इसमें धर्म, समाज, प्रेम, प्रकृति और राष्ट्रभक्ति जैसे विषयों को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ की प्रमुख साहित्यिक शैलियाँ काव्य, नाटक, उपन्यास, कथा, भक्ति साहित्य और आधुनिक साहित्य हैं। सरला दास, उपेन्द्र भंज, गोपबंधु दास और फकीर मोहन सेनापति जैसे साहित्यकारों ने ओड़िया साहित्य को ऊँचाइयां दी हैं ।

2. नृत्य

ओडिसी नृत्य- यह भारत के आठ शास्त्रीय नृत्य शैलियों में से एक है। इसकी उत्पत्ति जगन्नाथ मंदिर में हुई थी, जहाँ देवदासियाँ भगवान जगन्नाथ की सेवा में नृत्य करती थीं। इसमें त्रिभंगी मुद्रा,भाव, राग और ताल जैसी मुद्राएँ बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं।

छऊ नृत्य- यह एक युद्धकला आधारित लोकनृत्य है, जिसमें नकाब (मुखौटा) पहनकर रामायण, महाभारत और पुराणों की कहानियों को प्रस्तुत किया जाता है।

घुमुरा और संबलपुरी नृत्य- घुमुरा एक युद्ध नृत्य है जिसमें पुरुष पारंपरिक वाद्य यंत्र "घुमुरा" के साथ नृत्य करते है, जबकि संबलपुरी नृत्य पारंपरिक त्योहारों और उत्सवों में किया जाता है।

गोटीपुआ नृत्य- यह नृत्य ओडिसी नृत्य का प्रारंभिक रूप माना जाता है जिसमें छोटे लड़के स्त्री रूप धारण कर सुंदर

भावों के साथ नृत्य करते हैं। इस नृत्य को भी भक्ति और सेवा का प्रतीक माना जाता हैं ।

3. लोककला और जनजीवन

लोककथाएँ और लोकगीत: ओडिशा में कंध, गोंड, सोरा, संताल, भूमिज जैसी कई आदिवासी जनजातियाँ रहती हैं, जिनकी अपनी लोककथाएँ, नृत्य, गीत और संस्कृति है। "धोप कथा", "लेजरा गीत" और "जनना" प्रसिद्ध लोकगीत हैं। यहाँ की अधिकतर जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और ये लोग मुख्यतः कृषि, मछली-पालन, बुनाई, हस्तशिल्प और वनों पर निर्भर रहते हैं ।

पहनावा और आभूषण- ओडिशा की पारंपरिक पोशाक में महिलाएँ साड़ी पहनती हैं, खासकर संबलपुरी, बोमकाई और पासापल्ली साड़ियाँ। पुरुष धोती और कुर्ता पहनते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आदिवासी महिलाएँ पारंपरिक गहनों से सजी रहती हैं।

4. पर्व-त्योहार और उत्सव

पुरी की रथयात्रा- भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की रथ यात्रा विश्व प्रसिद्ध है जिसमें इन्हें विशाल रथों पर बैठाकर गुंडीचा माता मंदिर ले जाया जाता है। हर वर्ष लाखों श्रद्धालु इस उत्सव में भाग लेते हैं।

दुर्गा पूजा- दुर्गा पूजा ओडिशा में धूमधाम से मनाई जाती है। यह पर्व देवी दुर्गा द्वारा महिषासुर राक्षस के वध और अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में मनाया जाता हैं। पूरे ओडिशा में कटक की पूजा सबसे भव्य और प्रसिद्ध होती है क्योंकि यहाँ चाँदी की ज़री वाली माता दुर्गा की प्रतिमा बनाई जाती हैं।

कार्तिक पूर्णिमा और बाली यात्रा- बाली यात्रा ओडिशा का सांस्कृतिक और व्यापारिक मेला है, जो हर वर्ष कार्तिक पूर्णिमा के दिन से शुरू होता है। यह मेला कटक शहर में महानदी के किनारे आयोजित होता है और ओडिशा के गौरवशाली समुद्री इतिहास को दर्शाता है ।

रज पर्व - यह तीन दिन तक मनाए जाना वाला नारीत्व और पृथ्वी की उर्वरता का उत्सव है। यह पर्व विशेष रूप से कन्याओं और महिलाओं के सम्मान में मनाया जाता है। नए कपड़े पहनना और सज धज के झूला झूलना इस पर्व की विशेषता है ।

खानपान - ओडिशा का भोजन सादा, पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है। यहाँ के प्रमुख व्यंजन हैं:

दालमाः इसमें दाल और विभिन्न प्रकार की सब्जियों का मिश्रण होता हैं ।

खिचड़ी: विशेषकर जगन्नाथ मंदिर की महाप्रसाद खिचड़ी छेना पोड़ा और रसगुल्ला यहाँ की प्रसिद्ध मिठाइयाँ हैं।

पखाल भात- गर्मियों का प्रमुख व्यंजन होता है ।

ओडिशा के मंदिरों का महाप्रसाद बहुत प्रसिद्ध है और श्रद्धा से ग्रहण किया जाता है।

निष्कर्ष:

ओडिशा की कला और संस्कृति भारत की विविधता का अद्भुत और गौरवपूर्ण हिस्सा है। इसकी परंपराएँ, त्योहार, नृत्य, संगीत, वास्तुकला और लोक जीवन न केवल इसकी ऐतिहासिक धरोहर को जीवंत रखते हैं बल्कि विश्व पटल पर भारत की सांस्कृतिक छवि को भी मजबूत करते हैं। आधुनिकता के इस युग में भी ओडिशा ने अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा है, जो सराहनीय है।

●●●

भारतवर्ष के लिए देवनागरी साधारण लिपि हो सकती है
और हिंदी ही सर्वसाधारण की भाषा होने के उपयुक्त है।

-शारदाचरण मित्र

ओडिशा की कला और संस्कृति : एक विविधतापूर्ण सांस्कृतिक धरोहर

सुश्री प्रिया कुमारी झा
कनिष्ठ अनुवादक

भारत विविधता में एकता का प्रतीक है और इसी विविधता की अनोखी छवि हमें ओडिशा की समृद्ध कला और संस्कृति में दिखाई देती है। पूर्वी भारत में स्थित ओडिशा न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और कलात्मक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण राज्य है। यहाँ की लोक परंपराएँ, जनजातीय विरासत, मंदिर स्थापत्य, नृत्य, संगीत और चित्रकला, सब मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक भूमि रचते हैं जो समय की सीमाओं से परे जाकर भी आज जीवंत बनी हुई है।

1. लोक कला और चित्रकला की पारंपरिक छटा: ओडिशा की लोक कलाएँ इसकी आत्मा हैं। पट्टचित्र इस राज्य की प्रमुख पारंपरिक चित्रकला है, जो सूती या तसर के कपड़े पर प्राकृतिक रंगों से बनाई जाती है। इसमें धार्मिक कथाएँ, खासकर जगन्नाथ, कृष्ण लीला और रामायण के प्रसंगों को चित्रित किया जाता है। जब स्नान पूर्णिमा के बाद भगवान श्री जगन्नाथ बीमार पड़ जाते हैं, तब अनसार उत्सव के रूप में उनकी प्रतिमा की पूजा के स्थान पर पट्टचित्रों का पूजन किया जाता है। यह परंपरा सदियों से चली आ रही है और इसने पट्टचित्र को धार्मिक दृष्टि से भी विशेष स्थान दिया।

पट्टचित्र को 2008 में Geographical Indication (GI Tag) मिला जिससे इसकी विशिष्टता को पहचान मिली। 2018 में ललित कला अकादमी द्वारा आयोजित "पारंपरिक कलाओं की प्रदर्शनी" में पट्टचित्र को राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किया गया, जिससे इसके संरक्षण के प्रयासों को बल मिला। 2020 में भी कोविड-19 महामारी के दौरान जब मंदिर बंद हो गए तब रघुराजपुर और आसपास के कारीगरों ने डिजिटल माध्यम से पट्टचित्र बेचना शुरू किया। इससे इन कलाकारों को नया बाजार मिला और यह कला अंतर्राष्ट्रीय पहचान पाने लगी।

सहजिया, संबलपुरी कपड़े, सांख संलग्न चित्रकला, और तसर पेंटिंग भी ओडिशा की प्रसिद्ध लोककलाओं में गिनी जाती हैं। ये कलाएँ न केवल राज्य की पहचान हैं बल्कि स्थानीय अर्थव्यवस्था का भी आधार हैं।

2. नृत्य और संगीत की मधुर लहरियाँ: ओडिशा के शास्त्रीय नृत्य की बात की जाए तो सबसे पहले ओडिशी नृत्य का नाम आता है, जो भारत के आठ प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों में से एक है। इसकी जड़ें प्राचीन मंदिरों में पाई जाती हैं, जहाँ इसे देवदासियाँ "महारी" परंपरा के तहत भगवान जगन्नाथ के समर्पण में प्रस्तुत करती थीं। छऊ नृत्य, जो एक मुखौटा पहनकर किया जाने वाला आदिवासी नृत्य है, यह भी अत्यंत प्रसिद्ध है। इसमें युद्ध, वीरता और पौराणिक कथाएँ नाटकीय ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं।

संगीत में ओडिशा का लोक संगीत जैसे "धोप", "रासकृता", "जनना", और गीत गोविंद की परंपरा विशेष स्थान रखती है। इसमें भक्ति और भावनात्मकता का सुंदर मिश्रण होता है। पश्चिम ओडिशा की रंगाबटी (संबलपुरी) धुन, दालखई नृत्य-गीत, करमा, नुआखाई पारंपरिक पर्वों में ढोल, नीसान, मांदर, पीपहूद आदि वाद्यों के साथ गायी-बजाई जाती हैं।

ओडिशा में जून, 2025 में खासकर, क्योंझर जिले में एक नई पहल- बारिश शुरू होने से पहले जंगल की आग (दावानल) रोकने के लिए पारंपरिक संकीर्तन मंडलियाँ (भजन गायक-नर्तक टोली) सक्रिय की गयी। उनमें शामिल महिला मंडलियों के कारण स्थानीय आग की घटनाएँ 20-30% तक कम हुई हैं। ये मंडलियाँ सादा लोकभजन गाकर जागरूकता फैला रही हैं।

इन कार्यक्रमों और पहलों से पता चलता है कि ओडिशा कि लोक-संस्कृति न केवल जीवित और आदरणीय है बल्कि सामुदायिक विकास और पर्यावरण-अभियानों से भी जुड़ी है।

3. मंदिर स्थापत्य और मूर्तिकला का वैभव :- ओडिशा की संस्कृति को समझने के लिए इसके मंदिरों को देखना आवश्यक है। ओडिशा, जिसे प्राचीन काल में कलिंग, उत्कल और उद्र देश कहा जाता था, भारत की सबसे समृद्ध मंदिर स्थापत्य परम्पराओं में से एक का केंद्र है। यहाँ के शिल्प, वास्तु और मूर्तिकला हजारों वर्षों से न केवल धार्मिक आस्था बल्कि कलात्मक श्रेष्ठता की भी मिसाल रही है। कोणार्क का सूर्य मंदिर, जो यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल है, अपनी विशिष्ट स्थापत्य शैली और रथ के आकार में निर्मित संरचना के लिए प्रसिद्ध है।

भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर 180 फीट ऊंचे शिखर, महीन खुदाई और पाषाण मूर्तियों से सुसज्जित है, पुरी के जगन्नाथ मंदिर की संरचना भारतीय वास्तुशास्त्र, खगोलविद्या और मूर्तिकला के अद्भुत समन्वय का प्रतीक है और राजारानी मंदिर भारतीय शिल्प, संगीत और नृत्य परंपरा का प्रतीक है। ये तीनों मंदिर कलिंग वास्तु शैली के अनुसार बनाए गए हैं, जो तीन प्रमुख भागों में विभाजित है:- विमान, जगमोहन और नाट्यमंडप।

इन मंदिरों की दीवारों पर उकेरे गए अलंकारिक शिल्प और भाव-भंगिमाओं वाली मूर्तियाँ ओडिशा की उन्नत मूर्तिकला परंपरा को दर्शाती हैं। ओडिशा के मंदिर पर्यटकों, इतिहासकारों और कला-प्रेमियों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

4.त्योहारों में झलकती सांस्कृतिक एकता:- ओडिशा के त्योहार केवल धार्मिक अवसर नहीं होते वे कला और संस्कृति के उत्सव होते हैं। पुरी की रथ यात्रा विश्व प्रसिद्ध है, जहाँ सभी जाति, वर्ग और धर्म के लाखों श्रद्धालु भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के रथ को खींचने एकत्रित होते हैं। इसी के साथ यहाँ मनाया जाने वाला तीन दिवसीय पर्व "रज", प्रकृति की उर्वरता और मातृभूमि को समर्पित होता है, जो नारी शक्ति और उपजाऊ धरती के बीच एक रश्मि है।

कार्तिक पूर्णिमा के समय कटक में आयोजित होने वाला मेला बाली जात्रा ओडिशा का एक अत्यंत प्रसिद्ध सांस्कृतिक और ऐतिहासिक मेला है, इसे भारत का सबसे बड़ा मुक्त वाणिज्यिक मेला (Open Trade Fair) भी माना जाता है। बरहमपुर का तीन दिवसीय कांधई जात्रा जो खिलौनों का मेला है, मिट्टी, लकड़ी और धातु से बने खिलौनों के साथ-साथ ग्रामीण कला को संरक्षित और प्रोत्साहित करने का कार्य करता है। धनुयात्रा, जो महाभारत पर आधारित दुनिया का सबसे बड़ा खुला नाटक माना जाता है, ओडिशा राज्य का एक अद्भुत सांस्कृतिक आयोजन है।

इस वर्ष रथ-यात्रा में कई आईआईटी-आईआईएम (IIT-IIM) के छात्र इंटर्न के रूप में शामिल हुए जिससे आयोजन में आधुनिक प्रबंधन तकनीक भी जुड़ी । इसके साथ ही ओडिशा सरकार ने तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए "श्री जगन्नाथ धाम" मोबाइल ऐप जारी किया -इसमें रथ यात्रा, दर्शन, भीड़ नियंत्रण सहित कई जानकारियाँ दी गई।

ओडिशा के त्योहार सामूहिक आयोजन, धार्मिक एकता, महिलाओं की साझेदारी, युवा भागीदारी और अंतर्राष्ट्रीय दर्शकों की उपस्थिति द्वारा सांस्कृतिक एकता को निरंतर पुष्ट करते हैं।

5. आदिवासी जीवनशैली और सांस्कृतिक रंग: ओडिशा की कुल जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा जनजातीय समुदायों से आता है। यहाँ के संथाल, कंध, गोंड, भुइयां, और बिरहोर जैसे समुदायों की अपनी अलग संस्कृति, पहनावा, गीत, नृत्य और धार्मिक मान्यताएँ हैं।

इन जनजातियों की भित्ति चित्रकला, धातु शिल्प और लोक संगीत आज भी संरक्षित हैं और राज्य की संस्कृति को विविधता प्रदान करते हैं। उनके त्योहारों और नृत्य समारोहों में प्राकृतिक जीवन से जुड़ी गहरी समझ और एक अनोखा सौंदर्यबोध देखने को मिलता है।

सौरा जनजाति के घरों की मिट्टी की दीवारों पर बनने वाली सौरा (इडिताल/इत्ताल) चित्रकला भी काफी प्रसिद्ध है। अप्रैल 2025 में कई डिजाइनरों ने इस पारंपरिक कला को हाथोजी और ब्लॉक-प्रिंट तकनीक से साड़ियों, दुपट्टों व जेकेटों पर उतार कर "सौरा ऑन फेब्रिक" नामक नई शृंखला प्रस्तुत की, जिससे ग्रामीण कलाकारों को सीधा बाजार मिला।

6. स्वाद में समृद्धि, परंपरा में एकता : ओडिशा की खान-पान संस्कृति अपने पारंपरिक स्वाद, ताजगी, संतुलन और स्वास्थ्यवर्धक तत्वों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें खेतों व समुद्र- दोनों की उपज समाहित होती है।

यहाँ का पखाल भात जो पानी में रातभर भिगोकर बनाया गया व्यंजन है-गर्मियों में ठंडक और पाचन सहायक माना जाता है; इसे आलू भर्ता, बड़ी चुरा आदि के साथ परोसा जाता है। कटक की सड़कों का मशहूर चाट-गरम आलू की ग्रेवी में डूबे दहीबड़े, प्याज, मसालें आदि से सजे होते हैं। यहाँ की एक सुप्रसिद्ध मिठाई छेना-पोड़ा, जिसका जन्म 1947 में दासपल्ला में हुआ था, आज ओडिशा की सांस्कृतिक पहचान बन चुका है। इसके साथ ही जगन्नाथ मंदिर में अनादि काल से बन रहे शाकाहारी महाप्रसाद की तो बात ही अलग है-यह प्रसाद सभी धर्म व जाति के लोगों में बांटा जाता है, यह भेदभाव रहित सामाजिक भोजन का प्रतीक है। महाप्रसाद के साथ-साथ मंदिर के बाहर मिलने वाला पुरी शहर का खाजा न केवल एक मिठाई है बल्कि श्रद्धा, परंपरा और स्वाद का एक ऐसा संगम है जो हर ओडिया हृदय में बसता है।

उत्तर-प्रदेश विकास मेला-2025 के दौरान भुवनेश्वर में आयोजित एक विस्तृत फूड फ़ेस्ट में सुभद्रा शक्ति महिला समूह के 40 स्टालों पर पारंपरिक ओडिया व्यंजनों को प्रदर्शित किया गया, जिससे स्थानीय स्वाद को बदलते समय में पहचान मिली और नीति आयोग ने कोरापुट कॉफी को "वोकल फॉर लोकल" के तहत पहचान देते हुए आदिवासी किसानों द्वारा उत्पादित इस पेय को बढ़ावा दिया-जिससे खान-पान संस्कृति में विविधता और समानता आई है।

ओडिशा की खान-पान संस्कृति स्थानीयता, स्वाद और स्वास्थ्य का अद्भुत मिश्रण है। यह न केवल घरों और मंदिरों तक सीमित है बल्कि मेलों, महिलाएं जंपयोगी समूह और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से इसे नई पहचान मिल रही है। यह आधुनिक ओडिशा की सांस्कृतिक एकता की अनूठी मिसाल है।

7.आधुनिक ओडिशा में कला और संस्कृति का स्थान : हालांकि शहरीकरण और आधुनिकता ने बहुत कुछ बदल दिया है, फिर भी ओडिशा की सांस्कृतिक जड़ें मजबूत बनी हुई हैं। सरकार और कई निजी संगठनों द्वारा पारंपरिक कलाओं को संरक्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। युवा कलाकारों की एक नई पीढ़ी भी इन परंपराओं को आधुनिक रंग देकर आगे बढ़ा रही है।

एक्सपो, बालू कला महोत्सव, और ओडिशा संगीत नाटक अकादमी जैसे मंचों ने इस सांस्कृतिक धरोहर को विश्व पटल पर लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ओडिशा की कला और संस्कृति केवल इतिहास की किताबों में नहीं, बल्कि लोगों की जीवनशैली, उत्सवों, मंदिरों और लोक कथाओं में आज भी सांस ले रही है। इसकी विविध कलाएं और सांस्कृतिक रूप अत्यंत समृद्ध हैं, जो न केवल राज्य की पहचान हैं, बल्कि भारत की विविधता, अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक निरंतरता का मेरुदंड भी है। हाल के महोत्सवों, प्रदर्शनियों और डिजाइन-फ्यूजन पहलों से इन कलाओं को नया बाजार व युवा दर्शक मिल रहे हैं पर साथ-साथ प्रामाणिकता, दस्तकारी कौशल और पारंपरिक ज्ञान को सुरक्षित रखना भी उतना ही आवश्यक है। समन्वित नीति, डिजाइन नवाचार और डिजिटल बाजार संभवतः इन परंपरागत कलाओं को आने वाले वर्षों में और समृद्ध करेंगे।

आज जब आधुनिकता के प्रभाव से पारंपरिक कलाएं संकट में हैं, तब ओडिशा की यह जीवंत सांस्कृतिक विरासत हमें यह सिखाती है कि अगर हम अपनी जड़ों से जुड़े रहें तो हमारी पहचान भी औरों से अलग और हमारा व्यक्तित्व भी संपूर्ण बना रहता है। हमें यह समझना होगा कि पारंपरिक कलाएँ कोई बीती हुई चीज़ नहीं बल्कि भविष्य की आत्मा भी हो सकती हैं, अगर उन्हें सही दृष्टिकोण और समर्थन मिले।

•••

ओडिशा : कला, संस्कृति और परंपरा की धरती

सुश्री शुभश्री पात्रो
सुपुत्री-टी प्रसाद राव पात्रो, लेखाकार

ओडिशा की सांस्कृतिक विरासत हजारों वर्षों पुरानी है। यहां की जनजातीय परंपराएं, मंदिर स्थापत्य, शास्त्रीय नृत्य और चित्रकला इसकी गहराई और विविधता को दर्शाते हैं। भारत के पूर्वी तट पर बसा ओडिशा एक ऐसा प्रदेश है जहाँ हर बात में कला है, हर परंपरा में कहानी है और हर त्योहार में आस्था की गूंज है। यह वह भूमि है जहाँ मंदिरों की दीवारें भी बोलती हैं, नृत्य में भक्ति झलकती है और लोकगीतों में जीवन गूंजता है।

"जहाँ मिट्टी भी सजे रंगों में,
और लहरों में हो गीत,
वो धरती है ओडिशा की,
जहाँ हर कोना है संगीत।"

ओडिशा की सबसे प्रसिद्ध पहचान है उसका ओडिसी नृत्य। यह केवल नृत्य नहीं, एक आराधना है जिसमें शरीर की लय, चेहरे के भाव और हाथों की मुद्राएं मिलकर देवी-देवताओं की कथाएँ सुनाई जाती हैं। ओडिसी भारत के आठ प्रमुख शास्त्रीय नृत्यों में से एक है, जो मंदिरों में आराधना के रूप में शुरू हुआ था। इसमें भक्ति, सौंदर्य और लय का अद्भुत मेल देखने को मिलता है। यह नृत्य मंदिरों की गोद में जन्मा और अब दुनिया भर में अपनी पहचान बना चुका है। पुरी, कोणार्क और भुवनेश्वर जैसे नगर न केवल धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण हैं बल्कि स्थापत्य कला के अद्भुत उदाहरण भी हैं। कोणार्क का सूर्य मंदिर, जिसकी दीवारों पर सूर्य की रथयात्रा उकेरी गई है, पत्थरों में कविता जैसी लगती है।

"पत्थरों की चुप्पी में,
सदियों की आवाज़ है,
कोणार्क की छाया में,
सूरज की परंपरा आज है।"

यहाँ की लोककला भी कम अद्भुत नहीं। पट्टचित्र जो कपड़े या ताड़पत्र पर बनी कहानियाँ हैं, जो रघुराजपुर जैसे गाँवों में आज भी पारंपरिक तरीके से बनाई जाती हैं। रंगों में भक्ति, रेखाओं में कथा और हर चित्र में श्रद्धा होती है। ओडिशा के लोक नाट्य जैसे पाला, दासकथिया और जात्रा गाँवों की गलियों में अब भी गूंजते हैं। इन नाटकों में केवल मनोरंजन नहीं, समाज को सिखाने और जोड़ने की शक्ति होती है।

"नाटक, कथा, गीत और तान,
ये हैं ओडिशा की असली शान।
जहाँ मंच नहीं, मिट्टी ही रंगमंच बन जाए,
और हर आवाज़ में एक लोकगीत गूंज जाए।"

यह राज्य त्योहारों की धरती भी है। पुरी की रथयात्रा, जिसमें लाखों श्रद्धालु खिंचते रथों के साथ चलते हैं, एक अनूठा दृश्य प्रस्तुत करती है। नुआखाई जैसे त्योहार कृषि से जुड़े हैं, जो जीवन की मिट्टी से गहराई से जुड़े हुए हैं।

"जब रथ के पहिए बढ़ते हैं,
तो भावनाएं भी चल पड़ती हैं।
ओडिशा की सड़कों पर नहीं,
दिलों में रथयात्रा होती है।"

आज के समय में भी ओडिशा अपनी परंपराओं को आधुनिकता के साथ साध रहा है। शिल्प मेलों, सांस्कृतिक उत्सवों और कला विद्यालयों के ज़रिए युवा पीढ़ी भी इस विरासत को संजोए हुए है।

ओडिशा केवल मंदिरों और नृत्य का प्रदेश नहीं बल्कि यह एक जीती-जागती संस्कृति है, जो समय के साथ भी अपनी आत्मा को नहीं खोती। यहाँ की कला बोलती है, संस्कृति गाती है और परंपराएँ जीना सिखाती हैं।

"जहाँ लय है, रंग है, रचना है,
वहाँ ओडिशा की आत्मा बसती है।
यह कला की भूमि है,
जहाँ इतिहास आज भी साँसें लेता है।"

●●●

ओडिशा की पट्टचित्र कला: एक सांस्कृतिक यात्रा

सुश्री अनिता दास
कनिष्ठ हिंदी अनुवादक

पट्टचित्र एक पारंपरिक तेल आधारित "स्काल" पेंटिंग है जिसकी उत्पत्ति भारतीय राज्य ओडिशा, पश्चिम बंगाल में हुई थी। पट्टचित्र लोक कला अपने जटिल डिजाइन, पैटर्न और भारतीय लोककथाओं के पौराणिक आख्यानों के लिए प्रसिद्ध है। यह कला रूप शुरू में ओडिशा के मंदिरों में अनुष्ठान उद्देश्यों के लिए उत्पन्न हुआ था और इसका उपयोग उनके पारंपरिक गीतों के वर्णन के दौरान एक दृश्य घटक के रूप में भी किया जाता था। पट्टचित्र कला भगवान जगन्नाथ से प्रेरित है, जो भगवान कृष्ण के अवतार हैं और हिंदू पौराणिक कथाओं पर आधारित वैष्णव संप्रदाय हैं। पट्टचित्र चित्रकला ओडिशा की कलाकृतियों के सबसे पुराने रूपों में से एक है। इन चित्रों के टुकड़े खंडगिरी में पाए गए 7वीं शताब्दी के गुफा चित्रों में देखे जा सकते हैं। इन पट्टचित्रों चित्रों को बनाने वाले कलाकारों को चित्रकार कहा जाता है जो महापात्र और महाराणा जातियों से संबंधित हैं। चित्रकार समुदाय ओडिशा के पुरी जिले के एक छोटे से कस्बे रघुराजपुर से है। इस गांव में, हर परिवार पट्टचित्र और लकड़ी के खिलौने, पत्थर आदि की नक्काशी जैसे शिल्प में योगदान देता है।

पट्टचित्र मूल रूप से ओडिशा तक ही सीमित था लेकिन पिछले कुछ वर्षों में इस कला रूप ने एक नया उद्देश्य प्राप्त कर लिया है। विदेशी पर्यटकों और कला प्रेमियों ने पट्टचित्र कला में अपनी रुचि दिखाई है, जिससे यह सीमाओं को पार कर दिन-प्रतिदिन फैल रही है। जगन्नाथ और पौराणिक लोगों की धार्मिक पेंटिंग के रूप में शुरू हुई यह कला बाजार की स्थितियों के कारण काफी हद तक बदल गई है। चित्रकारों ने कला में एक नया आकर्षण जोड़ने के लिए फूलों, जानवरों और ज्यामितीय पैटर्न के रूपांकनों को जोड़ना शुरू कर दिया है तथा उनके ऐतिहासिक सार को भी शामिल किया है।

इन चित्रों का निर्माण सूती कपड़े की दो परतों को लेही द्वारा आपस में चिपका कर तैयार की गयी सतह पर किया जाता है। कपड़े से इस प्रकार तैयार की गयी सतह, "पट" या "पट्ट" कहलाती है और इसी कारण यह चित्र, पटचित्र कहलाते हैं। विद्वानों के अनुसार इस चित्रण शैली में लोक एवं शास्त्रीय दोनों ही तत्वों का समावेश है तथा इन्हें बनाने में भुवनेश्वर, पुरी एवं कोणार्क के मंदिर एवं प्रासादों में बनाए गए म्यूरल चित्रों से प्रेरणा ली गई है। ओडिशा के अधिकांश पट्टचित्रकार मानते हैं कि पट्टचित्रों का विकास "जात्री" चित्रों के रूप में हुआ है। सामान्यत: तीर्थयात्रा को "जात्रा" भी कहा जाता है। जगन्नाथ जी की वार्षिक रथयात्रा भी "जात्रा" कहलाती है। इन्हीं अवसरों पर आने वाले तीर्थयात्री, जात्री कहे जाते हैं। यह पटचित्र मुख्यत: उन्ही तीर्थयात्रियों हेतु बनाये जाते थे जो देश के दूर -दराज़ के इलाकों से यहाँ जगन्नाथ जी के दर्शनार्थ आते थे। तीर्थयात्रा से लौटते समय वे इन चित्रों को जगन्नाथ पुरी के पवित्र प्रसाद स्वरुप एवं तीर्थ स्मृति के प्रतीक की भांति अपने साथ ले जाते थे। आम तौर पर वे इन्हें माथे पर या गले में धारण करते थे अथवा अपने घर के पूजास्थान में रखते थे। आरम्भ में जो पट्टचित्र बनाये जाते थे, वे आज बनाये जाने वाले पट्टचित्रों जैसे नहीं होते थे। इनका आकार बहुत छोटा रखा जाता था और इनपर केवल जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलभद्र का चित्रांकन किया जाता था।

ओडिशा के पुरी जिले में स्थित छोटा-सा गांव रघुराजपुर का हर घर एक नयी कहानी कहता है। घरों की दीवारों पर चित्र बने होते हैं। अन्य शिल्पों में प्रस्तर कला, कागज से बने खिलौने, टसरचित्र, काष्ठ कला, ताड़ के पत्तों पर चित्रकारी भी शामिल हैं। इन्हें कलाकार तैयार करते हैं और यही गांव वालों की आजीविका का मुख्य साधन है। इस गांव के चारों तरफ ताड़, आम, नारियल और गर्म जलवायु के अन्य पेड़ों के साथ-साथ पान के पत्तों का बाग भी है। लेकिन रघुराजपुर की अपनी पहचान है और वह ओडिशा की कला और शिल्प की समृद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। यहां का हर परिवार किसी न किसी प्रकार की दस्तकारी से जुड़ा हुआ है। रघुराजपुर हाल के वर्षों में एक लोकप्रिय पर्यटन स्थल बन गया है, जो दुनिया भर से आगंतुकों को आकर्षित करता है। पर्यटक गांव में जाकर पारंपरिक कला रूपों का अभ्यास देख सकते हैं, कलाकारों से बातचीत कर सकते हैं और पारंपरिक हस्तशिल्प खरीद सकते हैं। ये घर उनके निवास और स्टूडियो

दोनों के रूप में काम करते हैं। यहां तक कि सात-आठ साल की छोटी आयु के बच्चे भी पट्टचित्रकारी करते हैं। शिल्पी अपना उत्पाद विभिन्न गैर सरकारी संगठनों के जरिये बाजार में बेचते हैं। ऐसे कई संगठन दस्तकारी उत्पादों के प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और विपणन के काम में गांव की सहायता करते हैं। इस गांव के कलाकार ओडिशा और दूसरे राज्यों में आयोजित विभिन्न मेलों और प्रदर्शनियों में भी हिस्सा लेते हैं।

पट्टचित्र चित्रों में इस्तेमाल किए गए रूपांकन आमतौर पर हिंदू पौराणिक कथाओं और क्षेत्र की लोककथाओं से प्रेरित होते हैं। इन रूपांकनों को प्राकृतिक रंगों का उपयोग करके चित्रित किया जाता है। सिंथेटिक रंगों के समय में, प्राकृतिक रंग बहुत खास और अनोखे होते हैं। यह इस कलाकृति और इस गांव की विशिष्टता है जो हर एक आगंतुक को आकर्षित करती है। पट्टचित्र केवल एक पेंटिंग का रूप नहीं है, यह हमारी संस्कृति और परंपराओं से जुड़ा हुआ है। कई पीढ़ियों से चली आ रही समृद्ध रंग और जटिल विवरण और साथ ही आकर्षक कथाएँ एक स्थायी विरासत हैं। ऐसा कहा जाता है कि स्नान करने के बाद देवता अस्वस्थ हो जाते हैं और उन्हें पंद्रह दिनों तक जनता से दूर रखा जाता है, उस अवधि के दौरान पट्टचित्र चित्रों को देवताओं के रूप में संदर्भित किया जाता है। देवताओं की अनुपस्थिति में पट्टचित्र की पूजा करने की यह परंपरा रघुराजपुर के लोगों के लिए इस कला रूप की शुद्धता और सांस्कृतिक महत्व को दर्शाती है। पट्टचित्र की सुंदरता और सादगी इसे ओडिशा की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाती है जिसे न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर के कला प्रेमियों के बीच भी संजोया जाता है।

"पट" का अर्थ कपड़ा होता है जबकि चित्र का मतलब पेंटिंग है। जैसा कि नाम से ज़ाहिर संस्कृत है, पट्टचित्र पारंपरिक रुप से कपड़े पर बनाई जाती है जिसे आसानी से लपेटा जा सकता है। पट्ट कपड़े, अमूमन पुरानी साड़ियों से बनाया जाता है जिन पर कलफ़ न लगा हो। इन कपड़ों को इमली के बीज से बनाए गए पेस्ट से जोड़ा जाता है। इस पेस्ट को बनाने के पहले इमली के बीज को 2-3 दिन तक भिगोकर रखना होता है और इसके बाद ही इसे पीसकर पेस्ट बनाया जाता है जो चिपचिपा होता है। कपड़े को चिपकाने वाले इस गोंद का पारंपरिक नाम नीर्यास कल्प है। कपड़ों की तहों को चिपकाने के लिये इमली के बीज के साथ कैथा या बेल के रस का भी प्रयोग किया जाता है। वांछित मोटाई मिलने पर कपड़े को धूप में सुखाया जाता है और इस तरह पट्ट तैयार हो जाता है।

इसमें मुलायम ओडिशा मिट्टी का पत्थर मिलता है जिसका इस्तेमाल नक्काशी करने और वास्तुकला में किया जाता है। इस पत्थर को पीसकर इमली के बीज के पेस्ट में मिलाया जाता है और पट पर ब्रश से लगाया जाता है। इस प्रक्रिया के बाद पट को सुखाया जाता है। इसके बाद पट की सतह को गोलाकार पत्थर, सीपी या लकड़ी के चिकने टुकड़े से घिसा जाता है। लंबा पट तैयार होने के बाद उसे कई हिस्सों में काटकर उन पर चित्रकारी की जाती है। इन दिनों पट्टचित्र बनाने में कपड़े के अलावा टसर सिल्क का भी प्रयोग किया जाता है।

पट्टचित्र में चूंकि स्वदेशी तकनीक और सामान का इस्तेमाल किया जाता है, इसलिये ये कला असाधारण है। पट्टचित्र बनाने में जिन रंगों का प्रयोग किया जाता है, वे एकदम प्राकृतिक होते हैं। सफ़ेद रंग बनाने के लिये सीपियों का पावडर बनाकर, उसे पानी में डाला जाता और फिर गर्म किया जाता है और इस तरह से दूधिया सफ़ेद रंग तैयार हो जाता है। इसी तरह काला रंग बनाने के लिये मिट्टी के बर्तन को जलते दीये से निकलने वाले धुएं के ऊपर रखा जाता है। कैथा (कबीट) या बेल के रस को पावडर में मिलाकर गोंद बनाया जाता है। हरा रंग हरे पत्तों और हरे पत्थर से बनाया जाता है। इसी तरह लाल रंग बनाने के लिये स्थानीय पत्थर हिंगुला के पावडर का इस्तेमाल किया जाता है। एक अन्य स्थानीय पत्थर हरितल का इस्तेमाल पीला रंग बनाने में किया जाता है। एक और स्थानीय पत्थर खंडनील से नीला रंग बनाया जाता है। जगन्नाथ के चित्र बनाने के लिये इन पांच रंगों का प्रयोग किया जाता है जिसे पंच-तत्व भी कहा जाता है। कथा के चरित्र के भाव या रस में रंग का बहुत महत्व होता है। हास्य रस के लिए सफ़ेद, रौद्र रस के लिए लाल और अद्भुत रस के लिए पीले रंग का प्रयोग किया जाता है। कृष्ण के चित्र में नीला और राम के चित्र में हरा रंग प्रयोग होता है। इन पांच प्रमुख रंगों को मिलाकर क़रीब 120 और रंग बनाये जाते हैं। नारियल के खोल का इस्तेमाल बर्तन के रुप में किया जाता है जिसमें रंगों को घोला जाता है। इसी तरह पतले ब्रश बनाने के लिये चूहे के बालों का इस्तेमाल किया जाता है जबकि भैंस के बाल और केया जड़ से मोटे ब्रश बनाये जाते हैं।

ताड़ के पत्ते पर की जाने वाली तालपत्र चित्रकला पट्टचित्र कला की एक विशेष शैली है। ताड़ के पत्तों को पहले दो-तीन महीने तक धूप में सुखाया जाता है और फिर पानी में भिगोने के बाद इनपर हल्दी का लेप लगाया जाता है। इस प्रक्रिया से ताड़ का पत्ता सैंकड़ों साल तक ख़राब नहीं होता। आवश्यकता के अनुसार इन ताड़ के पत्तों को जोड़कर स्काल बनाया जाता है। इसके बाद लोहे की बारीक सुई से इन पर चित्रकारी की जाती

है। चित्रकारी में इस तरह के औज़ार का प्रयोग प्राचीन समय से होता रहा है। बहरहाल, लोहे की सुई से चित्र बनाने के बाद पत्ते को दीये की कालिख से रगड़ा जाता है ताकि जिन खांचों पर चित्रकारी की गई है उन्हें भरा जा सके। पत्ते पर बची रह गई कालिख को साबुन और पानी से धोया जाता है और फिर खांचों में भरी कालिख को जमने के लिये छोड़ दिया जाता है। तालपत्र चित्रों में पौराणिक कथाओं और दृश्यों को दर्शाया जाता है। पटचित्र स्काल में कुछ स्काल बड़े दिलचस्प होते हैं। इस तह पेंटिंग में एक चित्र तो सामने नज़र आता है लेकिन तह खोलते ही असाधारण एवं मनमोहक चित्र भी सामने आ जाता है।

पट्टचित्र पेंटिंग का मुख्य विषय जगन्नाथ देवता होते हैं और यह कला मुख्यतः पूजा और धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित है। इस कला के ज़रिये मंदिर में जगन्नाथ को उनके भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा के साथ कुलदेवता के रुप में दर्शाया जाता है। जगन्नाथ काले, बलभद्र सफ़ेद और सुभद्रा पीले रंग में होते हैं। पट्टचित्र में जगन्नाथ को श्रेष्ठ पति के रुप में दिखाया जाता है। जगन्नाथ के चित्र में उनका बहुप्रसिद्ध मुख बहु प्रतीकात्मक होता है। उनकी दो बड़ी आंखें सूर्य और चंद्रमा का प्रतिनिधित्व करती हैं। जगन्नाथ दरअसल ब्रह्मांड का प्रतिनिधित्व करते हैं इसलिये उन्हें आनंदी माना जाता है यानी जिसका न प्रारंभ है और न ही अंत।

जगन्नाथ को विष्णु भगवान का अवतार माना जाता है। पट्टचित्र में भी विष्णु के कई पहलुओं को दिखाया जाता है। पट्टचित्र में विष्णु को दशावतारों के रूप में दिखाया जाता है। इन चित्रों को दंत कथाओं को गाकर जगन्नाथ को समर्पित किया जाता है। ओडिशा के कई गांवों में राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधारित प्रसिद्ध साहित्यिक कृति गीत-गोविंद पढ़ी जाती है और ताड़ के पत्तों पर इन कथाओं का चित्र के माध्यम से वर्णन किया जाता है।

पट्टचित्र कला के चित्रों में रामायण, महाभारत और भगवद गीता के प्रकरण चित्रित किये जाते हैं। कुछ चित्रों में धार्मिक रीति-रिवाजों और देवी-देवताओं की पूजा के विभिन्न तरीकों को भी दिखाया जाता है। चित्रों में दुर्गा, गणेश और ओडिसी नृत्य करती नर्तकी को भी खूब दिखाया जाता है। ओडिशा की लोक कथाओं को भी चित्रों में बहुत स्थान दिया जाता है। भारत की अन्य जगहों की तरह यहां भी कला और वास्तुकला का गहरा संबंध है । उदाहरण के लिए जिस तरह भुवनेश्वर के पास उदयगिरि और खंडगिरि की गुफाओं में पौराणिक कथाओं का वर्णन देखने को मिलता है उसी तरह पट्टचित्र में भी वराह के रूप में विष्णु के अवतार या फिर बलि के वराह रूप को दर्शाया जाता है।

प्रकृति आधारित पट्टचित्र में जीवनदायी पेड़, पक्षियों और जानवरों को दर्शाया जाता है जो कला का बेहद सुंदर रूप हैं। काम कुंजरा और कंदरप रथ के चित्रों में अविवाहित कन्याओं को दिखाया जाता है। रथ और हाथी के चित्रों में बड़ी संख्या में अविवाहित कन्याओं को चित्रित किया जाता है। कुछ चित्रों के विषय उत्तेजक भी होते हैं। पट्टचित्र की विशिष्ट शैली में, पात्रों के चेहरों पर लंबी चोंच जैसी नाक, उभरी हुई ठोड़ी और लंबी आँखें होती हैं। वे चेहरे की विशेषताओं, हेयर स्टाइल, कपड़ों आदि से एक दूसरे से अलग होते हैं। पेंटिंग का मुख्य फोकस आकृतियों की अभिव्यक्ति और उनके द्वारा दर्शाए गए भाव हैं, गहरे रंग उन्हें और मजबूत बनाते हैं। पट्टों की सबसे अलग विशेषताओं में से एक है अलंकृत किनारों की विविधता जो फ्रेम जैसी उपस्थिति देने के लिए उपयोग की जाती है। पारंपरिक बॉर्डर ओडिशा के मंदिर मूर्तिकला रूपांकनों से प्राप्त होते हैं। सबसे लोकप्रिय बॉर्डर डिज़ाइनों में से एक दो उलझे हुए साँपों का डिजाइन है जिसे कोणार्क मंदिर के द्वार पर भी देखा जा सकता है।

पट्टचित्र भारतीय चित्रकला के अन्य शैलियों जैसे मुगल और पहाड़ी से काफी हद तक अप्रभावित रहा है, इस तथ्य के कारण कि ओडिशा काफी लंबे समय तक मुस्लिम शासकों द्वारा शासित नहीं था जिससे कला रूप को अपनी अनूठी शैली और परंपरा विकसित करने और उसे स्थापित करने के लिए पर्याप्त समय मिला। इसने कला को अपनी खुद की श्रेणी बनाने की अनुमति दी है। चित्रकार आज अपने बच्चों को अपने परिवार की कला परंपरा में प्रशिक्षित करने के अलावा उन्हें शिक्षा और प्रदर्शन के लिए बाहर भेजते हैं ताकि वे बिचौलियों पर निर्भर रहने के बजाय अपना खुद का व्यवसाय चला सकें। महिलाओं ने भी पूर्णकालिक चित्रकारी शुरू कर दी है। कई युवा लड़कियां और महिलाएं अब प्रशिक्षण ले रही हैं, जिनमें से काफी संख्या में गांव के बाहर से भी आ रही हैं। ऐसे छोटे-छोटे रमणीय गांवों में उत्पन्न होने वाली पट्टचित्र चित्रकलाएं दुनिया भर में पहुंचती हैं। पौराणिक संस्कृति और शास्त्रीय रोमांस से भरपूर, जीवंत रंगों और शानदार शिल्प कौशल के साथ, पट्टचित्र एक विशिष्ट कला रूप बन गया है और इसने भारत और विदेशों में कलाकारों और कला प्रेमियों की कल्पना को समान रूप से आकर्षित किया है।

●●●

महाप्रभु श्री जगन्नाथ स्वामी: ओडिशा की संस्कृति एवं विश्वव्यापी पहचान

श्री तुषार कान्ति साहा
सहायक लेखा अधिकारी

भारत के ओडिशा राज्य के पूर्वी तट पर स्थित शहर पुरी अपने वास्तविक नाम जगन्नाथपुरी के बिना अधूरा है क्योंकि यहाँ ब्रह्मांड के स्वामी महाप्रभु श्री जगन्नाथ भगवान विराजमान हैं। चारों धाम में सबसे प्रसिद्ध धाम जगन्नाथ धाम पुरी में स्थित है, जो कि न केवल भारतवर्ष अपितु संपूर्ण विश्व को गौरवान्वित करता है। इस पतितपावन श्री जगन्नाथ महाप्रभु का आगमन पुरी शहर में कैसे हुआ, यह एक बहुत ही रोमांचकारी घटना है।

सदियों पहले जब इस ब्रह्मांड का विशालतम युद्ध "महाभारत" अपने अंत की ओर अग्रसर हो रहा था तभी अपने सौ पुत्रों की मृत्यु से अत्यधिक शोकग्रस्त माता गांधारी ने भगवान श्री विष्णु के द्वापर युग में आठवें अवतार श्री कृष्ण को युद्ध न टालने एवं उस भयंकर विनाश को न रोकने का दोषी मानकर एक घोर श्राप दे दिया-"समस्त यदुवंश का आपसी कलह में नाश हो जाए एवं श्री कृष्ण की अत्यंत पीड़ादायक मृत्यु हो।" 36 वर्ष उपरांत जब श्री कृष्ण एक पुराने वृक्ष के छांव में बैठकर आराम कर रहे थे तभी "जरा" नामक एक शिकारी की नजर श्री कृष्ण के गुलाबी बाएँ चरण पर पड़ी। उस शिकारी ने उनके चरण को भूलवश हिरण समझकर एक विषैले बाण से उसे भेद दिया। भगवान श्री कृष्ण के करुण क्रंदन सुनकर जब "जरा" ने यह देखा कि उसका बाण हिरण की जगह द्वारिकाधीश श्री कृष्ण को लग गया है तो वह अत्यंत आत्मग्लानि से विभोर हो गया, तभी श्री कृष्ण ने जरा को बताया कि सब कुछ पूर्व निर्धारित था। त्रेतायुग में भगवान श्री विष्णु के सातवें अवतार श्री राम ने छिपकर वानरराज बाली का वध किया था तभी उन्होंने वानरराज को यह वरदान दिया था कि द्वापर युग में वह जरा के रूप में उनके आठवें अवतार श्री कृष्ण का वध करेंगे। भगवान के अंतिम संस्कार के पश्चात उनके ब्रह्मात्मा ने एक नीले रंग के पत्थर का रूप

धारण कर लिया। जरा ने उस नील शिला को महानदी में प्रवाहित कर दिया।

बहुत समय पश्चात उड्र प्रदेश (वर्तमान ओडिशा) के शबर समुदाय के प्रधान विश्ववसु ने महानदी तट पर उस नील शिला को पाया एवं नीलांचल पर्वत की एक गुफा में "नीलमाधव" नाम से स्थापित कर पूजा प्रारंभ कर दिया।

सत्ययुग में उनवन्ती (वर्तमान उज्जैन) के सूर्यवंशी राजा इंद्रद्युम्न न केवल एक प्रतापी राजा थे अपितु वे भगवान

विष्णु के परम उपासक भी थे। एक बार उन्हें पता चला कि शबर जनजाति के लोगों के द्वारा नीलांचल पर्वत में नील शिला से निर्मित नीलमाधव की पूजा-अर्चना अत्यंत हर्षोल्लास से हो रही है। व्याकुलतापूर्वक राजा ने अपने पुजारी के भाई "विद्यापति" को सारा माज़रा पता करने के लिए नीलांचल पर्वत भेजा। विद्यापति वहाँ शबर समुदाय के प्रधान विश्ववसु से मिले एवं उनका आतिथ्य ग्रहण किए। विद्यापति ने विश्ववसु की सुंदर कन्या ललिता के प्रेम में विभोर होकर उससे विवाह कर लिया। विद्यापति के बारंबार आग्रह के उपरांत भी शबर समुदाय का कोई भी व्यक्ति उन्हें नीलमाधव के पास ले जाने के लिए राजी नहीं था। अत्यंत हठ के उपरांत प्रधान विश्ववसु उसे दिव्य शिला-नीलमाधव के दर्शन कराने के लिए राजी हुए परन्तु उनकी आंखों में पट्टी बांधकर नीलांचल पर्वत के उस पवित्र गुफा में ले जाया गया। अत्यंत चतुराई से विद्यापति ने सारे रास्ते में सरसों के बीज गिरा दिए ताकि बाद में अंकुरित होकर पोधा का रूप ले लें एवं मार्ग पता चल जाए। विद्यापति उस अद्भुत नीलमाधव को देखकर मंत्रमुग्ध हो गए एवं बिना विलंब किए राजा इंद्रद्युम्न को सारा वृत्तांत विस्तारपूर्वक बता दिया। यह सुनकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए एवं तुरंत ही नीलमाधव के दर्शन की आकांक्षा में नीलांचल पर्वत की ओर प्रस्थान किए। परन्तु जब वे वहाँ पहुंचे, तब वह दिव्य शिला रहस्यमयी रूप से अदृश्य हो चुकी थी एवं स्वयं विश्ववसु भी उसे खोज न सके।

गहरे शोक में डूबे राजा इंद्रद्युम्न ने मृत्यु पर्यन्त तपस्या करने का संकल्प ले लिया। उनका हृदय दुःख एवं करुणा से विभोर हो गया। इस करुणा से भरे क्षण में भगवान विष्णु ने स्वप्न में प्रकट होकर उन्हें सांत्वना दिया कि कुछ दिनों बाद राजा को समुद्र में तैरता हुआ एक दिव्य और पवित्र काष्ठ "दारु" मिलेगा, जिससे भगवान की मूर्ति निर्मित होगी एवं उसकी उपासना पुरी में होगी। ठीक इसी प्रकार, कुछ ही दिनों में पुरी के निकट समुद्र तट पर पवित्र काष्ठ बहती हुई आई। राजा इंद्रद्युम्न ने उस दारु को श्रद्धा से मंगवाया और भगवान की प्रतिमा बनाने के लिए देश-विदेश से अनेक शिल्पकार बुलाए। परन्तु कोई भी शिल्पकार उस पवित्र काष्ठ को काटने या तराशने में सफल नहीं हो पाए क्योंकि वह अत्यधिक कठोर थी एवं उसपर उपयोग होने वाले सभी औजार निष्क्रिय हो जाते थे।

तभी भगवान विश्वकर्मा एक वृद्ध बढ़ई का रूप धारण कर राजा इंद्रद्युम्न के पास पधारे एवं उन्होंने भगवान की प्रतिमा बनाने के लिए राजा से विनम्र आग्रह किया। परन्तु उनकी एक शर्त थी कि वे एक बंद कमरे मे 21 दिनों तक रहकर प्रतिमा बनाएँगे एवं इस दौरान कोई भी व्यक्ति दरवाजा नहीं खोलेगा। राजा ने सहमति दे दी एवं वे रहस्यमयी वृद्ध बढ़ई दिव्य दारु के साथ एक कक्ष में बंद हो गए। कुछ दिनों तक कमरे से औजारों की आवाज आती रही परन्तु कई दिनों बाद अंदर से कोई भी आवाज आनी बंद हो गई। लगातार कई दिनों तक कोई भी आवाज न आने पर राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी रानी गुंडीचा व्याकुल हो गईं एवं अनहोनी के संदेह में उन्होंने समय से पहले दरवाजा खोलने का आदेश दिया। जब दरवाजा खोला गया तो वह वृद्ध बढ़ई अदृश्य हो चुका था और वहाँ तीन मूर्तियाँ अपूर्ण अवस्था में स्थित थी, जिनके हाथ, पाँव अधूरे थे। तभी राजा-रानी एवं समस्त मंत्रीगण घोर पछतावे में डूब गए। उसी क्षण देवऋषि नारद वहाँ पधारे और उन्होंने राजा को बताया कि भगवान इसी स्वरूप में अवतरित होना चाहते थे और दरवाजा खोलने का विचार स्वयं जगन्नाथ महाप्रभु ने ही रानी गुंडीचा के मन में डाला था। इसी प्रकार पुरी में राजा इंद्रद्युम्न के द्वारा "श्वेत पेगोडा" के नाम से विख्यात चार धामों में एक धाम श्री जगन्नाथ धाम की स्थापना हुई एवं भगवान जगन्नाथ अपने बड़े भाई बलभद्र एवं छोटी बहन माता सुभद्रा के साथ जगन्नाथ धाम में विराजमान हुए। ये तीनों मूर्तियाँ अपूर्ण होते हुए भी अपने आप में संपूर्ण हे एवं संपूर्ण विश्व को संचालित करती है।

•••

ओडिशा के लोक नृत्य

श्री रणवीर कुमार
लेखाकार

भारत में ओडिशा सांस्कृतिक और कलात्मक दृष्टि से एक समृद्ध राज्य है। इसका मूल कारण अतीत में विभिन्न शासकों के शासनकाल में ओडिशा में कला एवं पारंपरिक हस्तकला, शिल्पकला, चित्रकला, नक्काशी, नृत्य और संगीत में विभिन्न और विविध परिवर्तन है।

मौर्यकाल का कलिंग या महाभारत काल का उत्कल राज्य या आधुनिक काल का ओडिशा यहाँ के लोकनृत्यों में ओडिशा के लोक कलाओं का अद्भुत मिश्रण है।

ओडिशा के लोक नृत्यों की विशेषताएँ :

1. ये नृत्य धार्मिक एवं सामाजिक पर्वों के दौरान प्रस्तुत किए जाते हैं।
2. इनमें पारंपरिक वेशभूषा, मुखौटे, संगीत और सामूहिक प्रदर्शन की विशिष्टता होती है।
3. इनमें आम जीवन, प्रकृति, देवी-देवताओं के प्रति आस्था तथा सांस्कृतिक संवाद को व्यक्त करते हैं।

ओडिशा के लोक नृत्यों का सांस्कृतिक महत्व :

ओडिशा के लोकनृत्य न केवल मनोरंजन का माध्यम है बल्कि ये सामाजिक एकता, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का आधार भी है। ये राज्य के विभिन्न जनजातीय समूहों और पारंपरिक समाज के जीवन में गहराई से जुड़े हुए हैं।

इन लोक नृत्यों के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान, सामाजिक आदर्श और लोक कथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेषित होती है।

ओडिशा के प्रमुख लोक नृत्य :

- घुमुरा नृत्य
- डस्कशिया
- पाला
- ढलखाई नृत्य
- छऊ नाच
- कर्म नाच
- बाघा नाच
- कीसाबादी
- दप नृत्य
- गोटीपुआ

ओडिशा के लोक नृत्य में कई नृत्य शामिल है। इनमें घुमुरा नृत्य, पाला, छऊ और ढलखाई काफी लोकप्रिय है। इनके अलावा राज्य के कई अन्य लोक नृत्य भी हैं। ये सभी लोकनृत्य राज्य के विभिन्न भागों की संस्कृति और परंपराओं और विभिन्न समाज को प्रदर्शित करते हैं।

घुमुरा नृत्यः

यह ओडिशा का सबसे लोकप्रिय लोकनृत्य है। इसकी उत्पति कालाहांडी जिले से हुई है। घुमुरा पहले युद्ध के समय कालाहांडी राज्य में एक दरबारी नृत्य के रूप में इस्तेमाल किया गया था। विशिष्ट मिश्रित ध्वनि जो घुमुरा, निशान, ढ़ोल, ताल, मदाल आदि जैसे वाद्ययंत्रों से निकलती है और कलाकारों के भाव और चाल इस नृत्य को "वीर नृत्य" बनाते हैं। नृत्य वर्तमान समय में सभी वर्गों के बीच सामाजिक मनोरंजन, विश्राम, प्रेम, भक्ति और मैत्रीपूर्ण भाईचारे के साथ जुड़ा हुआ

है। पारंपरिक रूप से यह कालाहांडी और दक्षिण-पश्चिमी ओडिशा के बड़े हिस्सों में नुक्खाई और दशहरा समारोह के साथ जुड़ा हुआ है।

पाला नृत्यः

यह नृत्य पूरे ओडिशा में किया जाता है। इसे सत्यपीर

को जगाने के लिए किया जाता है। इसमें नर्तक समूह बनाकर नृत्य करते हैं। इसमें मृदंग और झांझ का उपयोग किया जाता है। पाला नृत्य के दो प्रकार हैं, बैठकी और थिचा।

दलखाई नृत्यः

यह नृत्य ओडिशा के संबलपुर जिले से उत्पन्न हुआ

है। यह नृत्य मुख्यतः दशहरा में देवी दुर्गा को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। लेकिन यह अन्य त्योहारों जैसे भाई जींटिया, फागुन, पुनी, नुआखाई आदि पर भी किया जाता है। इसमें सामूहिकता और पारंपरिक वेशभूषा का विशेष महत्व होता है।

छऊ नृत्यः

यह एक मार्शल आर्ट नृत्य है जिसमें नर्तक लकड़ी की तलवार और ढाल लेकर नृत्य करते हैं। इसमें तलवार से वार व ढाल से बचाव के साथ ढोल की ताल पर नृत्य किया जाता है। यह लोक नृत्य ओडिशा के ग्रामीण क्षेत्रों में काफी प्रचलित है। इसमें मुखौटा पहनकर पारंपरिक कहानियों का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

बाघा नाचः

यह नृत्य ओडिशा के तटीय इलाकों में ज्यादा प्रचलित है। इसमें पुरुष नर्तक बाघ की खाल तथा हाथ पर कालाधारी को बनाकर किया जाता है।

कीसाबावीः

यह नृत्य पुरुषों द्वारा किया जाता है। यह एक संबलपुरी लोकनृत्य है। इसमें गाने का मुख्य विषय राधा और कृष्ण की

प्रेम कहानी से लिया जाता है।

ढप नृयः

ओडिशा का यह संबलपुरी लोकनृत्य ज्यादातर कोसल क्षेत्र की कंधा जनजाति द्वारा किया जाता है। इसे मुख्य रूप से विवाह समारोह के दौरान और मनोरंजन के लिए भी किया जाता है। नृत्य का नाम ढप वाद्ययंत्र से लिया गया है।

इन नृत्यों के अलावा ओडिशा के कुछ अन्य लोक नृत्य भी हैं जैसे- नचनी, छोलाई, हम्बोली, दोलजीत, दैका, भिकानी, रसारकेली, गुंचिकुटा आदि।

•••

ओडिशा की कला एवं संस्कृति पर आदिवासी सभ्यता का प्रभाव

श्री शिवानंद
कनिष्ठ अनुवादक

ओडिशा भारत के सबसे समृद्ध सांस्कृतिक राज्यों में से एक है, जहाँ आदिवासी समुदायों की विविधता ने इसकी कला, संगीत, लोकनृत्य, खान-पान और रहन-सहन आदि को प्रभावित किया है। ओडिशा में लगभग 62 से अधिक आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। राज्य की लगभग 22% आबादी विभिन्न आदिवासी समूहों से संबंधित है, जिनमें संथाल, गोंड, कोया, सोरा, डोंगरिया कोंध, बोंडा, जुआंग, कोंध और भुइयां जैसी जनजातियाँ शामिल हैं। इन जनजातियों की जीवनशैली, लोक परंपराएँ, कला एवं संस्कृति ने पूरे ओडिशा की कला एवं संस्कृति को विशेष रूप से प्रभावित किया है।

कला एवं शिल्प पर प्रभाव:

पट्टचित्र: यह ओडिशा की प्रसिद्ध कला शैली है, जिसमें आदिवासी जीवन, देवी-देवताओं और प्रकृति से जुड़े चित्रण देखने को मिलते हैं। पट्टचित्र, ओडिशा की एक पारंपरिक चित्रकला शैली है जो कपड़े पर बनाई जाती है।

सौरा पेंटिंग: यह एक प्रमुख आदिवासी चित्रकला है जो सोरा जनजाति द्वारा बनाई जाती है। सौरा पेंटिंग में, सफेद रंग का उपयोग करके लाल या गेरू रंग की पृष्ठभूमि पर चित्र बनाए जाते हैं। ये चित्र दीवारों पर बनाए जाते हैं और इनमें ज्यामितीय आकृतियों के माध्यम से जीवन, प्रकृति और देवी-देवताओं को दर्शाया जाता है। इन चित्रों में मानव आकृतियाँ, जानवर, वृक्ष, पर्वत और दैनिक जीवन की गतिविधियाँ चित्रित की जाती हैं।

धातु एवं मिट्टी शिल्प:

धोकरा कला: यह आदिवासियों की प्राचीन धातु ढलाई तकनीक है, जिसमें पीतल और कांसे से मूर्तियाँ व आभूषण बनाए जाते हैं। ओडिशा के कटक, ढेंकनाल, क्योंझर, अंगुल, मयूरभंज, कंधमाल, रायगढ़, गजपति, कालाहांडी और कोरापुट जिलों में 5 हजार से अधिक कारीगर ढोकरा शिल्प के उत्पादन में अपनी पारंपरिक कौशल को समर्पित हैं, जो न सिर्फ उनकी आदिवासी पहचान के संरक्षण को सुनिश्चित कर रहा है बल्कि उन्हें रोजी रोटी कमाने में भी मदद कर रहा है। ढोकरा शिल्प उत्पादों की बिक्री विभिन्न शिल्प मेलों में की जाती है इसके अलावा ई-कॉमर्स प्लेटफार्म पर भी इनकी बहुत मांग है। लोग सजावट एवं विशेष आकर्षण के लिए इन कलाकृतियों को अपने घरों में रखना पसंद करते हैं।

टेराकोटा शिल्प: कोया और कोंध जनजातियाँ मिट्टी के बर्तनों एवं मूर्तियों को विशिष्ट डिजाइनों से सजाती हैं। इसमें रोजमर्रा घरों में प्रयोग होने वाले सामानों के अलावा विभिन्न प्रकार के सजावटी सामान एवं मूर्तियाँ आदि बनाई जाती हैं जो देखने में बहुत ही सुंदर एवं आकर्षक होती हैं।

वस्त्र एवं बुनाई कला:

कोटपाड़ साड़ी: इसमें आदिवासी ज्यामितीय पैटर्न का उपयोग किया जाता है। संथाल, सोरा और अन्य आदिवासी समूहों के पारंपरिक डिजाइन, जैसे कोटपाड़ साड़ी ओडिशा के टेक्सटाइल को विशिष्ट बनाते हैं। यह ओडिशा की एक प्रसिद्ध

हथकरघा साड़ी है जो कोरापुट जिले के कोटपाड़ गांव के मिरगन समुदाय के आदिवासी बुनकरों द्वारा बनाई जाती है। यह साड़ी अपनी प्राकृतिक रंगों और पारंपरिक डिजाइनों के लिए जानी जाती है तथा पारंपरिक हथकरघा उद्योग को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोटपाड़ हथकरघा कपड़ा को भारत का भौगोलिक संकेतक (जीआई) दर्जा भी प्राप्त है।

इक्कत बुनाई:– बोंडा और अन्य जनजातियों के डिजाइनों से प्रेरित यह तकनीक ओडिशा के साड़ी उद्योग में प्रसिद्ध है। ओडिशा में इक्कत बुनाई एक पारंपरिक कला है, इसे "बंध" के नाम से भी जाना जाता है और यह अपनी जटिल डिजाइन और रंगों के लिए प्रसिद्ध है। इक्कत बुनाई में धागों को बांधकर रंगाई किया जाता है और फिर उन्हें बुनाई में इस्तेमाल किया जाता है, जिससे कपड़े पर विशेष पैटर्न बनते हैं। इक्कत बुनाई संबलपुर, बरगढ़, बलांगीर और कालाहांडी जिलों में अधिक की जाती है। इन साड़ियों की बुनाई में आदिवासी रंगों और डिजाइनों का प्रभाव दिखता है।

संगीत एवं नृत्य में आदिवासी योगदान:

ढाप नृत्य: संथाल जनजाति का यह समूह नृत्य ढोल और

मादल की थाप पर किया जाता है। ढाप नृत्य, जिसे "संबलपुरी लोक नृत्य" भी कहा जाता है, ओडिशा के कोसल क्षेत्र की कंध जनजाति द्वारा किया जाने वाला एक पारंपरिक नृत्य है। यह नृत्य पुरुष और महिला दोनों द्वारा किया जाता है और आमतौर पर नुआखाई जैसे त्योहारों के दौरान किया जाता है।

गोटीपुआ नृत्य: इसमें आदिवासी लोककथाओं को नाट्य रूप में दिखाया जाता है। गोटीपुआ नृत्य न केवल एक कला रूप है बल्कि यह ओडिशा की सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी है। यह नृत्य ओडिसी शास्त्रीय नृत्य के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नुआखाई जुहार: यह फसल उत्सव आदिवासी और गैर-आदिवासी दोनों समुदायों द्वारा मनाया जाता है। नुआखाई पर्व ओडिशा के सबसे महत्वपूर्ण कृषि त्योहारों में से एक है, जिसे बड़े उत्साह और आस्था के साथ मनाया जाता है। इस त्योहार की जड़ें पश्चिमी ओडिशा की कृषि परंपराओं से जुड़ी हैं। यह इस क्षेत्र के लोगों के अपनी ज़मीन, प्रकृति और फसलों के साथ गहरे जुड़ाव का प्रतीक है। "नुआखाई" शब्द दो ओड़िया शब्दों से मिलकर बना है: "नुआ" जिसका अर्थ है "नया" और "खाई" जिसका अर्थ है "भोजन" या "खाना"। कुल मिलाकर, "नुआखाई" का अर्थ है "नई फसल का खाना"। इसमें नई फसलों से उत्पन्न अनाज, खासकर चावल, जो इस क्षेत्र का मुख्य भोजन है, के पहले सेवन से पूर्व देवताओं को अर्पित किया जाता है।

लोकभाषा एवं अन्य प्रभाव:

ओडिशा की कई आदिवासी भाषाएँ (जैसे कुड़ुख, हो, संथाली, सौंरा) वहाँ की लोकभाषा और लोककथाओं का हिस्सा बन चुकी हैं। जनजातीय समुदायों की कहानियाँ, मिथक और लोकगाथाएँ आज भी ओडिशा की जनसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग हैं।

ओडिशा की कला और संस्कृति में आदिवासी समुदायों का योगदान अतुलनीय है। राज्य सरकार ने इन परंपराओं को संरक्षित करने के लिए आदिवासी संग्रहालय और सांस्कृतिक कार्यक्रमों, आदिवासी मेलों आदि को बढ़ावा दिया है। ओडिशा की कला और संस्कृति में आदिवासी सभ्यता का प्रभाव केवल एक ऐतिहासिक विरासत नहीं है बल्कि वह आज भी जीवंत और गतिशील है। आदिवासी समुदायों की जीवनशैली, परंपराएँ और कलात्मक अभिव्यक्तियाँ न केवल राज्य की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती हैं बल्कि वह हमें प्रकृति, सामूहिकता और आत्मनिर्भर जीवन के मूल्यों की भी याद दिलाती हैं। इस समृद्ध विरासत का संरक्षण और सम्मान आवश्यक है जिससे इस संस्कृति एवं सभ्यता को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित किया जा सके।

•••

ओडिया हिंदू विवाह - सादगी एवं परंपरा का उत्सव

श्री अमित कुमार मिश्रा
पिता- श्री यशराज मिश्रा, लेखाकार

ओडिशा अपनी प्राकृतिक समृद्धि, जैव विविधता और लुभावनी वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध है। ओड़िया लोगों की सादगी, उनकी गहरी अध्यात्मिकता और सदियों पुरानी परंपराओं का पालन उनके विवाह के रीति-रिवाजों में पूरी खुबसूरती से झलकता है। ओड़िया हिंदू विवाह जिसे "बहगहरा" भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयोजन है। परंपरा में गहराई से निहित यह समायोजन न केवल दो व्यक्तियों का मिलन है बल्कि दो परिवारों और उनकी वंशावली का एक साथ आना भी है। इन विवाह समारोहों में दिखावटीपन नहीं होता बल्कि इनमें अनुष्ठानों की पवित्रता, पारिवारिक एकता एवं ईश्वर के आशीर्वाद पर जोर दिया जाता है। मुख्य विवाह अनुष्ठान दुल्हन के घर (दुआरा) और दूल्हे के घर (टोला कनियास) में किए जाते हैं, जिनमें विवाह से पहले, विवाह के दिन और विवाह के बाद के विस्तृत रीति-रिवाजों की एक श्रृंखला होती है।

विवाह के पहले की रस्में :

निर्वंध (सगाई): विवाह की यात्रा निर्वंध (सगाई), जिसे "लग्नधरा" भी कहा जाता है, से शुरू होती है। जहाँ दुल्हन के घर या मंदिर में पारिवारिक कुल देवताओं की उपस्थिति में पवित्र प्रतिज्ञाएं ली जाती है। इसे एक औपचारिक प्रतिबद्धता माना जाता है। जब परिवार की सहमति हो जाती है, तब कुंडली मिलान के बाद भगवान के प्रसाद और उपहारों के आदान-प्रदान कर समारोह में निर्वंध (सगाई) को अंतिम रूप दिया जाता है। इस रस्म में यह जानना दिलचस्प है कि यह आयोजन आमतौर पर दूल्हा-दुल्हन की अनुपस्थिति में होता है।

जयी अनुकोलो (विवाह की घोषणा):- यह शादी की तैयारियों की औपचारिक शुरूआत का प्रतीक है। शादी के निमंत्रण पत्र मुद्रित किए जाते हैं और इसे एक विशिष्ट अनुक्रम में वितरित किया जाता है। सबसे पहले परिवार के देवता को निमंत्रण भेजा जाता है, जिसे "देव निमंत्रण" कहते हैं। उसके बाद पान और मेवे के साथ दोनों परिवारों के मामा को निमंत्रण दिया जाता है, जिसे "मोला निमंत्रण" कहा जाता है। तत्पश्चात् दुल्हन के पिता व्यक्तिगत रूप से दूल्हे के परिवार के पास जाकर निमंत्रण एवं उपहारों के साथ उन्हें आमंत्रित करते हैं, जिसे "ज्वेन निमंत्रण" कहा जाता है। यह निमंत्रण हिंदू पौराणिक कथाओं में निहित दामाद के महत्त्व को भी दर्शाता है। इन चरणों का पालन करते हुए बाकी निमंत्रण रिश्तेदारों और मित्रों को बाँट जाते हैं।

मंगन (हल्दी समारोह): यह समारोह शादी के एक दिन पहले होता है, जहाँ आशीर्वाद और शुद्धिकरण अनुष्ठान के रूप में सात विवाहित महिलाओं द्वारा दूल्हा और दुल्हन को हल्दी का लेप लगाया जाता है। यह अनुष्ठान जोड़े को आध्यात्मिक और शारीरिक रूप से शादी के लिए तैयार करता है।

जयरागड़ा अनुकुला (पवित्र ज्योति जलाना): पवित्रता एवं दिव्य उपस्थिति का प्रतीक एक पवित्र ज्योति जलाई जाती है, जिसे पूरे विवाह अनुष्ठान के दौरान हवन अग्नि के रूप में प्रज्ज्वलित रखा जाता है।

दीया मंगुला पूजाः दुल्हन की शादी की पोशाक- उसकी साड़ी, चूड़ियाँ, बिछिया और सिंदूर स्थानीय मंदिर में अर्पित किए जाते हैं, ताकि एक सामंजस्यपूर्ण विवाहित जीवन के लिए देवी का आशीर्वाद प्राप्त किया जा सके। परंपरागत रूप से यह अनुष्ठान नाई की पत्नी के द्वारा संपादित किया जाता है।

नंदीमुखः दूल्हे और दुल्हन के पिता शादी के जोड़े के लिए अपने पूर्वजो का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए इस अनुष्ठान को करते है।

शादी की पोशाक:

दूल्हे की पोशाक: दूल्हा सूती या रेशम से बनी पारंपरिक धोती पहनता है, जिसे सूती शर्ट या कुर्ते के साथ पहना जाता है।

दुल्हन की पोशाक: दुल्हन पारंपरिक रूप से लाल बार्डर वाली पीली साड़ी पहनती है जिसे "बाठला पट्टा" कहा जाता है। दुल्हन का सिर एक अलंकृत दुपट्टे से ढका होता है और वह सोने के आभूषणों तथा शंख और पोला से सुसज्जित होती है। दुल्हन के पहनावे में विशिष्ट ओडिशाई साड़ियाँ जैसे- संबलपुरी साड़ी, बोमकाई साड़ी, इक्कट रेशम वाली साड़ी, ब्रह्मपुरी पाटा, खंडुआ पाटा इत्यादि शामिल होती हैं।

विवाह के दिन की रस्में: दूल्हा अपने परिवार के साथ विवाह स्थल तक की यात्रा पर निकलता है, जिसे "बड़जात्री" कहा जाता है। जहाँ दुल्हन के परिवार के द्वारा द्वार पर उनका गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है। दूल्हे के पैर नारियल के पानी से धोए जाते हैं और उसे दही, घी, चीनी और शहद का मिश्रण खिलाया जाता है। यह शुभता का प्रतीक माना जाता है। इसके साथ ही दुल्हन को दूल्हे के आगमन की सूचना दी जाती है और उसे आध्यात्मिक रूप से शुद्ध करने के लिए औपचारिक स्नान के लिए ले जाया जाता है, जिसे "बडुआ पानी गढ़ुआ (दुल्हन का स्नान)" कहा जाता है।

तत्पश्चात् कन्यादान के अनुष्ठान में दुल्हन का पिता अपनी बेटी को दूल्हे को सौंपता है जिसमें दूल्हा आजीवन प्यार, वफादारी और सम्मान का वादा करता है। इसके बाद "हठ ग्रंथि फीता (पाणिग्रहण)" का अनुष्ठान होता है, जिसमें दुल्हन का पिता जोड़े का हाथ जोड़ता है और उन्हें आम के पत्तों की माला पहनाता है, जो पवित्रता और सौभाग्य का प्रतीक है। यह दुल्हन के बेटी से पत्नी बनने के प्रतीकात्मक परिवर्तन को दर्शाता है। इस अनुष्ठान के बाद पवित्र अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है। इसके बाद "सप्तपदी (सात पवित्र कदम)" की रस्म में जीवन की चुनौतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पवित्र चावल के सात छोटे टीले (सप्तकिल पर्वत) जोड़े के सामने रखे जाते हैं। दूल्हे की सहायता से दुल्हन अपने दाहिने पैर से उन्हें गिराती है और साथ में सात कदम चलती है जो जीवन की यात्रा में साझा जिम्मेदारी, प्यार और समर्थन का प्रतीक माना जाता है। फिर "लाजाहोमा खाई पोड़ा" की रस्म में दूल्हे का भाई दुल्हन के हाथों में लाजा (फुला हुआ चावल) डालता है जिसे दूल्हे के हाथों के सहारे पवित्र अग्नि में चढ़ाते हैं, जो अग्नि देव से आशीर्वाद मांगने को दर्शाता है। आगे के रस्म में, दुल्हन का भाई दूल्हे की पीठ पर हल्के से प्रतीकात्मक रूप में मुक्का मारता है, जिससे वह अपनी बहन के प्रति आजीवन जिम्मेदारी की याद दिलाता है। इस रस्म को "साला बिधा" कहा जाता है। अंत में, सिंदूर दान की सबसे महत्वपूर्ण रस्म निभाई जाती है, जिसमें युगल ध्रुव तारा को देखते हैं, जो दृढ़ता का प्रतीक है। फिर दूल्हा दुल्हन के मांग में सिंदूर लगाता है और उसकी कलाई पर शंख की चूड़ियाँ पहनाता है जो उनके शाश्वत बंधन का प्रतीक है।

विवाह के बाद की रस्में: शादी के बाद जोड़ा सीपियों से एक कौड़ी का खेल खेलते हैं। जिसे "कदूरी खेला" कहा जाता है, जो उनके नए जीवन में चंचलता और सामंजस्य का प्रतीक माना जाता है। दुल्हन की माँ फिर दूल्हे को दही-पखाल और बैंगन खिलाती है जिसे "सासू दही पखाल खिया" कहते हैं। यह रस्म दूल्हे को उस परिवार में स्वीकार करने का प्रतीक माना जाता है। तत्पश्चात् एक मार्मिक रस्म का निर्वहन होता है जिसे "बहुना" कहते हैं। इसमें दुल्हन अपने परिवार को विदाई देती है और इसमें भावुता से भरे हुए रोते हुए गीत गाए जाते हैं।

दूल्हे के घर पहुँचने पर दुल्हन को "गृह प्रवेश" नामक रस्म से औपचारिक स्वागत किया जाता है, जहाँ उसे घर में समृद्धि लाने वाली देवी लक्ष्मी के रूप में माना जाता है। शादी के चार दिन बाद "बसरा राती" की रस्म में जोड़ा विशेष अनुष्ठानों और प्रार्थनाओं के बाद अपनी शादी को पूरा करता है। अंतिम उत्सव "अष्टमंगला", आठवें दिन होता है जब युगल जोड़ी दुल्हन के पैतृक घर पर पारिवारिक पुनर्मिलन और दावत के लिए लौटते हैं। यह शादी के रस्मों के पूरा होने को दर्शाता है।

ओडिया हिंदू विवाह में वैदिक रीति-रिवाजों को क्षेत्रीय परंपराओं के साथ खूबसूरती से मिश्रित किया जाता है, जो आध्यात्मिक शुद्धता, पारिवारिक सद्भाव और सादगी पर जोर देता है। विवाह का हर चरण, सगाई से लेकर अंतिम अनुष्ठान तक भक्ति, संस्कृति, पहचान और सामाजिक जिम्मेदारी को दर्शाता है। ओड़िया हिंदू विवाह प्रेम, एकता और दिव्य आशीर्वाद का उत्सव है।

●●●

ओडिशा की कला, संस्कृति एवं इतिहास

श्री मनीष चन्द्र बरनवाल
सहायक लेखा अधिकारी

"संस्कारों से बंधी मैं, संस्कृति मेरी पहचान है,
मैं कहूँ शान से मेरा भारत महान है।
शिष्टाचार और सभ्यता की यहाँ खान है,
और आने वाला हर अतिथि यहाँ भगवान है।"

जब कोई समाज कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपने व्यक्तिगत मान-अपमानों की परवाह किए बिना अपने राष्ट्र, अपनी मातृभूमि के अस्तित्व पर आए संकट या संघर्ष में अपने प्राणों की बाजी लगाता है या फिर बलिदान हो जाता है, तो वह उस राष्ट्र और समाज की संस्कृति की ही रक्षा करता है और बलिदान होना ही, उस बलिदानी वीर पुरुष की संस्कृति है।

यह संस्कृति ही है, जो राष्ट्र पर मर मिटने के लिए प्रेरित करती है। भारत का प्रांतीय राज्य उत्कल प्रदेश जो वर्तमान में ओडिशा के नाम से विख्यात है, वह भारतीय परंपरा, इतिहास, कला एवं संस्कृति को बखूबी निभा रहा है।

यह वही ओडिशा है जिसने प्राचीन काल में सम्राट अशोक के सामने घुटने नहीं टेके तथा अपने गौरवशाली इतिहास को स्वर्णमयी कर दिया। ऐसी मान्यता है कि कलिंग विजय के बाद अशोक का हृदय परिवर्तित हुआ तथा उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया।

ओडिशा की संस्कृति जो कि भारतीय संस्कृति के विराट रूप का एक रूप है वह वेद से वेदान्त तक, संस्कार से संस्कृति तक, पद्य से गद्य तक, आधुनिक समाज के विज्ञान से अध्यात्म के तरंगों तक सभी के हृदय में झंकृत हो रही है।

ओडिशा का इतिहास

प्राचीन काल में ओडिशा उत्कल, कलिंग तथा ओड्र देश के नाम से विख्यात था। यह प्राचीन काल से ही एक सशक्त राजनीतिक शक्ति के रूप में विकसित था। बौद्ध साहित्य यह बताता है कि बुद्ध के निर्वाण काल में यह प्रदेश राजा ब्रह्मदत्त द्वारा शासित था। ई.पू. शताब्दी में नन्द वंश के प्रतिष्ठाता महापद्मनंद ने पहली बार ओडिशा को जीता था जो कि अल्प समय के लिए था। बाद में सम्राट अशोक महान ने यहाँ चढ़ाई की एवं इसे जीता। इस घटना के पश्चात उन्होंने युद्ध का सर्वथा त्याग कर दिया एवं बौद्ध धर्म को अपना लिया।

प्रथम शताब्दी में कलिंग राज खारवेल ने ओडिशा का विशाल भाग जीता एवं विशाल कलिंग साम्राज्य की स्थापना की। यह एक सशक्त राष्ट्र था, जो बाहरी आक्रांताओं जैसे शकों, हूणों, अरबों से अपनी रक्षा में स्वत: सिद्ध था। इसी समय इसने एक मजबूत नौ-शक्ति के रूप में भी अपनी पहचान को स्थापित किया। आठवीं शताब्दी में ओडिशा के सम्राट शैलेंद्र द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया में जावा या "यव" प्रदेश विजय इतिहास के पन्नों में स्वर्ण अक्षर से लिखा गया। "यव" प्रदेश के विजय को मनाने की परंपरा ओडिशा में "बाली यात्रा" उत्सव के नाम से प्रतिवर्ष बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। इस विजय का महत्व इस बात से पता चलता है कि दुनिया का सर्वाधिक मुस्लिम संख्यक देश इंडोनेशिया (जावा) अपने राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में भगवान गरुड़ को चुनता है, अपने नोटों में श्री गणेश भगवान तथा महालक्ष्मी को अपनाता है तथा जगह-जगह नुक्कड़-गलियों में रामायण एवं महाभारत को रंगमंच पर उतारता है। धर्म एवं संस्कृति के ऐसे विरोधात्मक प्रवाह का अनूठा संगम हमें अपनी प्राचीन विरासत की याद दिलाता है और हमारा सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में भी जब मुस्लिम आक्रांताओं ने अपना कदम कलिंग प्रदेश की ओर बढ़ाया तो उन्हें मुँह की खानी पड़ी। "वीरभोग्या वसुंधरा" तथा "नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:" जैसे उपनिषद के उद्घोष ओडिशा के वीरों के लिए सर्वथा उचित हैं।

सांस्कृतिक विरासत

महान राजाओं और राजवंशों द्वारा शासित उत्कल प्रदेश ने अनेक परम्पराएँ अर्जित की हैं। ओडिशा आर्य, द्रविड़ और

आदिवासी संस्कृतियों का संगम है। राज्य के बहुत सारे भाग के त्योहारों में संस्कृतियों के कुछ अंशों की झलक सहज ही देखने को मिलती है। कुछ त्योहार सामान्य होते हैं लेकिन उनका उत्सव किसी क्षेत्र विशेष के लिए विशिष्ट होता है। पुरी में चन्दन यात्रा और रथ यात्रा विशेष उल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाता है, हालांकि बरिपदा, अट्ठागढ़, ढेंकनाल, कोरापुट और राज्य के बाहर भी कई अन्य स्थानों पर बड़े धूमधाम से मनाया जाता है।

कला-धर्म-संस्कृति

ओडिशा कला, धर्म व संस्कृति का एक अनूठा संगम है। यहाँ पर संगीत की एक गौरवशाली परंपरा रही है। प्राचीन मंदिरों तथा मंदिरों के दीवारों पर उकेरी गयी देवी–देवताओं की आकृतियाँ ओडिशा की समृद्ध कला का प्रतीक हैं। ओडिसी संगीत एक शास्त्रीय शैली है जिसमें हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत के सभी आवश्यक तत्व समाहित हैं। ओडिसी संगीत शैलियों अर्थात ध्रुवपद, चित्रपद, चित्रकला और पांचाल का एक संश्लेषण है, जिसका वर्णन 19वीं शताब्दी के आरंभ में रचित दो ग्रन्थों, संगीत सारणी और संगीत नारायण में किया गया है।

ओडिशा की धार्मिक विरासत बहुत समृद्ध और विविध है, जिसमें हिन्दु धर्म, बौद्ध धर्म और आदिवासी धर्मों का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दू धर्म

ओडिशा में हिन्दू धर्म का एक लंबा एवं गौरवशाली इतिहास है, पुरी का जगन्नाथ मंदिर, भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा को समर्पित है, जो चार धामों में से एक है।

- जगन्नाथ मंदिर हर साल रथ–यात्रा के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें शामिल होने देश–विदेश से लाखों श्रद्धालु भाग लेते हैं।
- लिंगराज मंदिर भुवनेश्वर में स्थित है और भगवान शिव को समर्पित है।
- कोणार्क का सूर्य मंदिर अपनी वास्तुकला और नक्काशी के लिए प्रसिद्ध है, जो 13वीं शताब्दी में बनाया गया था।

बौद्ध धर्म

ओडिशा में बौद्ध धर्म का प्रभाव भी काफी गहरा है। यहाँ कई महत्वपूर्ण बौद्ध स्थल और अवशेष हैं। रत्नागिरि, उदयगिरि, ललितगिरि, इत्यादि यहाँ के प्रमुख स्थल हैं।

आदिवासी संस्कृति

ओडिशा में आदिवासी काफी संख्या में उपस्थित हैं। अपने पुरातन संस्कृति को जीवित रखकर उनकी एक अलग पहचान, अलग बोली, नृत्य शैली, रहन–सहन ओडिशा की संस्कृति में चार चाँद लगा देते हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि ओडिया संस्कृति अपने इतिहास के गौरव को संजोते हुए आधुनिकता को अपनाकर, धर्म का एक अनूठा संगम लिए, श्री जगन्नाथ जी को हृदय में बसाकर भारत के उत्तर तथा दक्षिण भागों के रीति-रिवाजों को जोड़कर वसुंधरा पर ओडिशी नृत्य की तरह अनुपम छटा बिखेर रहा है।

●●●

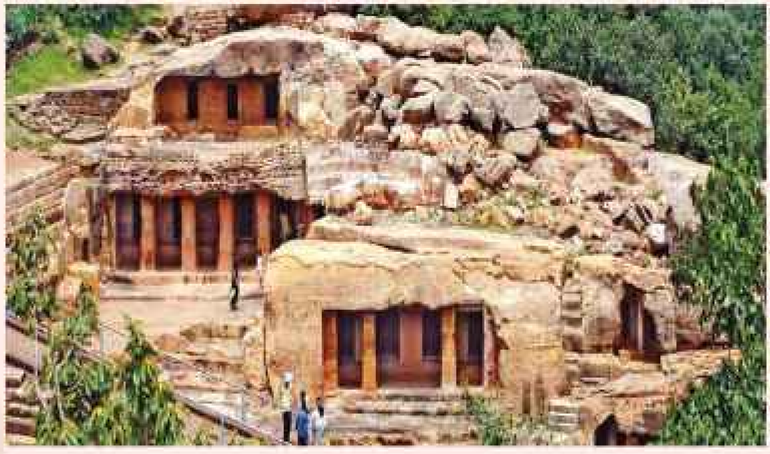

ओडिशा की कला और संस्कृति

श्री रबिन्द्र कुमार दास
सहायक लेखा अधिकारी

ओडिशा का दूसरा नाम उत्कल है, जिसका अर्थ है कला में उत्कृष्टता की भूमि। ओडिशा उत्कृष्ट हस्तशिल्प और पारंपरिक कला रूपों का एक खजाना है, जो प्राचीन संस्कृति एवं कला की एक समृद्ध विरासत है। पीढ़ियों के अनुशासित प्रयासों के माध्यम से धीरे-धीरे विकसित हुए, ओडिशा की हस्तशिल्प कला ने अपने स्वयं की ताजगी और आकर्षण के साथ अपने अनुभवी पारंपरिक मूल्यों को बनाए रखा है। ओडिशा की कला, नृत्य, संगीत, हस्तशिल्प, पेंटिंग आदि विषयों को केवल एक लेख में समाहित करना संभव नहीं है, शायद इसे कई पुस्तकों में भी समाहित करना संभव न हो। अत: हम ओडिशा की कला एवं संस्कृति के कुछ प्रमुख पहलुओं पर संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं।

पट्टचित्र (कपड़ा चित्रण):

ओडिशा की कला और संस्कृति के क्षेत्र में, "पट्ट" शब्द कपड़े का प्रतीक है, जबकि "चित्र" तस्वीर को दर्शाता है। पट्टचित्र एक पारंपरिक कला रूप है जो पौराणिक कथाओं में डूबा हुआ है, जो अक्सर भगवान जगन्नाथ और वैष्णव संप्रदाय से संबंधित विषयों पर केंद्रित होता है। भगवान जगन्नाथ और राधा-कृष्ण के चित्र विशेष रूप से कला के उत्साही लोगों द्वारा मांगे जाते हैं। पट्टचित्र गणेश और शिव के चित्रण को भी प्रदर्शित कर सकता है।

रॉक पेंटिंग (Rock Paintings):

ओडिशा में रॉक आर्ट के इतिहास का पता प्रागैतिहासिक युग से लगाया जा सकता है, जैसा कि विरामखोल, झारसुगुड़ा जिले में शुरुआती निष्कर्षों से पता चलता है। अशोक महान के शासन के समय में बौद्ध मूर्तिकला के प्रभाव ने ओडिशा की कलात्मक विरासत को विकसित और समृद्ध किया। उल्लेखनीय रूप से, रत्नागिरि, ललितगिरि और उदयगिरि की गुफाएं आदि कुशल कारीगरों द्वारा बनाई गई मूर्तिकला इसकी असाधारण विरासत को दर्शाती हैं।

रेत कला:

अपने कच्चे माल के रूप में स्वच्छ, बारीक दाने वाली रेत और पानी के साथ, यह कला का एक स्वदेशी रूप है। पुरी के समुद्र तटों पर हिंदू देवताओं से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अवसरों तक की थीमों पर रेत कला प्रदर्शित की जाती है। यह कला पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है तथा इसे दुनिया भर में मान्यता मिली है। पद्मश्री सुदर्शन पट्टनायक ओडिशा के ख्याति प्राप्त सैंड आर्टिस्ट हैं।

सिल्वर फाइलिग्रे (Silver Filigree):

स्थानीय रूप से "तारकशी" के रूप में संदर्भित, इस कला का लगभग पांच शताब्दियों तक फैली एक विरासत है। इसकी उत्पत्ति कटक में हुई, जिसे अक्सर ओडिशा का चांदी का शहर (Silver City) कहा जाता है। इस तकनीक में तार के नाजुक स्ट्रैंड बनाने के लिए उत्तरोत्तर छोटे छेदों की एक श्रृंखला के माध्यम से चांदी खींचने की सावधानीपूर्ण प्रक्रिया शामिल है। कटक में दुर्गा पूजा के दौरान दुर्गा मूर्तियों को सजाने और ओडिसी नर्तकियों की पोशाक पहनाने में तारकशी आभूषणों का प्रमुखता से उपयोग होता है।

एप्लीक कार्य (Applique Work):

पिपिली गाँव से निकले इस प्रसिद्ध ताने-बाने को "पिपिली चंदुआ काम" के नाम से जाना जाता है। विशेष रूप से, पिपिली को दुनिया के सबसे बड़े विषयगत उपकरण कार्य के आवास के लिए लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में भी मान्यता प्राप्त है। मूल रूप से, पट्टचित्र के समान, एप्लीक कार्य में मंदिर-केंद्रित कार्य प्रमुख थे, जिसमें प्रमुख रूप से वार्षिक रथ यात्रा के दौरान उपयोग की जाने वाली छतरियों का कार्य शामिल था। हालांकि, यह अब इसका प्रयोग घर की सजावटी वस्तुओं, त्योहार कला, कढ़ाई, सिलाई आदि में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त, ओडिशा में धोकरा नामक 4000 साल पुरानी शिल्प परंपरा का दावा किया जाता है, यह मोम तकनीकों के

साथ धातुकर्म में विशेषज्ञता को दर्शाती है। इसमें आदिवासी शिल्प बर्तनों, तख्तों, लैंपों और आदिवासी आभूषणों सहित विविध वस्तुओं को बनाने के लिए टिन और तांबे या पीतल और जस्ता के मिश्र धातुओं का उपयोग किया जाता है।

संगीत:

ओडिशा, मुख्य रूप से विविध जनजातियों द्वारा बसा हुआ है, अद्वितीय गीतों और नृत्य शैलियों की एक टेपेस्ट्री का जश्न मनाता है। ओडिशा के बहुमुखी सांस्कृतिक पहलुओं की खोज करते समय, किसी को ओडिसी संगीत की अनदेखी नहीं करनी चाहिए, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक विशिष्ट शाखा है। उड़िया भाषा के उद्भव से पहले ही ओडिसी गीतों की रचना हो चुकी थी। प्रसिद्ध उड़िया कवि जयदेव गायन के लिए बने गीतों में अग्रणी व्यक्ति थे, जिन्होंने ओडिसी संगीत की नींव रखा था।

ओडिसी नृत्य:

ओडिसी, जिसकी जड़ें मूल रूप से देवदासियों द्वारा देवताओं की आराधना से जुड़ी हुई हैं। यह पारंपरिक रूप से भगवान कृष्ण और उनके प्रिय राधा के बीच पवित्र प्रेम का वर्णन करता है, जो जयदेव के काव्यात्मक छंदों से प्रेरणा लेता है। यह नृत्य अनिवार्य रूप से पौराणिक कहानियों का चित्रण है, जो प्रतीकात्मक वेशभूषा, अभिव्यंजक अभिनय, जटिल मुद्राओं और एक अंतर्निहित अनुग्रह के माध्यम से जीवन में लाया जाता है जो इसके आकर्षण को परिभाषित कराा है।

छऊ नृत्य:

छऊ नृत्य ओडिशा का एक प्रसिद्ध आदिवासी मार्शल आर्ट से प्रभावित नृत्यकला है, जिसमें आदिवासी पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत किया जाता है। यह नृत्य मयूरभंज जिले में विशेष रूप से लोकप्रिय है। यह एक अर्ध-शास्त्रीय भारतीय नृत्य है जिसमें मार्शल आर्ट, लोक नृत्य और मुखौटा कला का मिश्रण होता है। छऊ नृत्य में रामायण, महाभारत और स्थानीय लोककथाओं के दृश्यों का मंचन किया जाता है।

गोटिपुआ नृत्य:

गोटिपुआ एक अनूठी परंपरा को संदर्भित करता है जहां युवा पुरुष नर्तक महिला पात्रों की भूमिका निभाते हैं। ये लड़के, आमतौर पर 6 से 14 वर्ष के बीच के होते हैं, अक्सर पुरी मंदिर के पास स्थित अखाड़ों या व्यायामशाला के छात्र होते हैं। उनके मंत्रमुग्ध करने वाले प्रदर्शन में कलाबाजी युद्धाभ्यास होते हैं जो अपने स्वयं के गायन के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं और एक आकर्षक कला रूप का प्रदर्शन करते हैं।

पाला:

गाथागीत की यह विशिष्ट शैली ओडिसी संगीत, नाटकीय तत्वों, संस्कृत कविता और बुद्धि और हास्य के अपेक्षित स्पर्श को निर्बाध रूप से मिश्रित करती है। एक गायक, चार से पांच संगीतकारों के एक छोटे से पहनावे के साथ, धार्मिक महाकाव्यों और पौराणिक ग्रंथों के एपिसोड का वर्णन करता है, जिससे कला और मनोरंजन का आकर्षक संलयन होता है।

लखाई (संबलपुरी):

ओडिशा के लोक नृत्यों पर चर्चा करते समय, "संबलपुरी' अक्सर केंद्र में मंच लेती है, "दलखाई" अपने विभिन्न रूपों में सबसे प्रसिद्ध है। संबलपुर की जनजातियों के भीतर जन्मा, यह नृत्य दशहरा जैसे त्योहारों की शोभा बढ़ाता रहता है। पुरुष इस कला रूप में युवा महिला नर्तकों के साथ भाग लेते हैं, जो जीवंत संबलपुरी साड़ियों में सुशोभित हैं, ढोल बजाने वालों और संगीतकारों के रूप में कार्य करते हैं। सामूहिक रूप से, वे रामायण और महाभारत के एपिसोड के साथ राधा और कृष्ण की मनमोहक प्रेम कहानी को जीवन में लाते हैं, अपने प्रदर्शन के माध्यम से एक मंत्रमुग्ध करने वाली कथा का प्रदर्शन करते हैं।

भाषा:

ओडिशा में अधिकांश आबादी द्वारा बोली जाने वाली प्रमुख भाषा ओड़िया है। इंडो-आर्यन परिवार से संबंधित यह भाषा बंगाली और असमिया के साथ घनिष्ठ भाषाई संबंध रखती है। हालांकि, राज्य में आदिवासी कई आदिवासी भाषाओं में संवाद करते हैं, जो द्रविड़ और मुंडा भाषा परिवारों का हिस्सा हैं।

लोग:

ओडिशा, जिसकी 95% आबादी हिंदू धर्म में विश्वास रखती है और 62 से अधिक अलग-अलग आदिवासी समुदायों का घर है। राज्य की सांस्कृतिक समृद्धि वास्तव में उल्लेखनीय है। देश के उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों को पाटने वाले एक तटीय गलियारे के रूप में स्थित, ओडिशा ने ऐतिहासिक रूप से आर्यों और द्रविड़ों दोनों के सांस्कृतिक प्रभावों को अवशोषित किया है। इसके मुख्य रूप से ग्रामीण चरित्र के बावजूद, ओडिशा के

लोग अपनी धार्मिकता के लिए जाने जाते हैं, विशेष रूप से, ओडिशा देश में सबसे कम अपराध दरों में से एक है। ओडिशा के आदिवासी समुदायों को जीवन के सरल सुखों में खुशी मिलती है, और लोग अपनी डाउन-टू-अर्थ प्रकृति (down-to-earth nature) और मामूली जरूरतों के लिए जाने जाते हैं।

पखालः (पानी में भीगा हुआ चावल)

यह एक प्रकार का किण्वित चावल (fermented rice) होता है जिसे पानी में भिगोकर थोड़ा समय छोड़ दिया जाता है। कभी-कभी इसमें दही, नमक, हरी मिर्च, सरसों के दाने, करी पत्ता आदि डाले जाते हैं। पखाल आसानी से किसी भी ओड़िया के चेहरे पर मुस्कान ला सकती है। अन्य राज्यों के व्यंजनों के विपरीत, ओड़िया पाक परंपराएं कम तेल और मसालों का उपयोग करती हैं, फिर भी वे प्रचुर मात्रा में स्वाद प्रदान करती हैं। एक विशिष्ट ओड़िया भोजन में चावल, दाल या दालमा (पौष्टिक सब्जियों के साथ पकाई गई दाल का एक प्रकार), कुछ वनस्पति व्यंजन, कुछ तला हुआ और एक मछली या मांस करी जैसे तत्व शामिल होते हैं। पखाला, छेना पोड़ा (एक लजीज भुना हुआ पनीर मिठाई), और मानसा तरकारी (आलू के साथ मांस करी) जैसे पारंपरिक व्यंजनों को राज्य भर में खाया जाता है।

त्योहारः

ओडिशा के त्योहार सांस्कृतिक समारोहों का एक जीवंत टेपेस्ट्री हैं, जो परंपरा और आध्यात्मिक उत्साह में डूबा रहता है। ये उत्सव जीवंत जुलूस, जीवंत संगीत और रंगीन अनुष्ठानों के साथ गूंजते हैं, जो समुदायों को एकता और भक्ति की भावना में एक साथ लाते हैं। राज्य के त्योहार धार्मिक महत्व और सांस्कृतिक उत्साह का एक अनूठा मिश्रण प्रदान करते हैं, जो उन्हें ओडिशा की समृद्ध विरासत का एक अभिन्न अंग बनाते हैं।

रथ यात्रा

रथ यात्रा एक महत्वपूर्ण हिंदू त्योहार है, जो विशेष रूप से भगवान जगन्नाथ की आराधना से जुड़ा हुआ है। यह त्योहार मुख्य रूप से पुरी, ओडिशा में बहुत भव्य रूप में मनाया जाता है। जो लाखों श्रद्धालु तीर्थयात्रियों को आकर्षित करती है। इसमें भगवान जगन्नाथ, उनके भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा विशाल रथों पर सवार होकर मंदिर से बाहर पुरी मंदिर से गुंडिचा मंदिर तक जाते हैं जहां वे नौ दिनों की अवधि तक रहते हैं और इसके बाद वे मुख्य मंदिर (श्रीमंदिर) में वापस आते हैं।

प्रथमष्टमीः

एक महत्वपूर्ण शीतकालीन त्योहार, यह पहली बार जन्मे बच्चों की दीर्घायु के लिए आशीर्वाद लेने के लिए देखा जाता है। रमणीय और मधुर व्यंजन, जिसे एंडुरी पीठा के नाम से जाना जाता है, इस अवसर को मनाने के लिए विशेष रूप से तैयार किये जाते हैं।

रज पर्वः

जून के मध्य में तीन दिनों तक चलने वाला यह त्योहार विशेष रूप से लड़कियों के लिए बहुत महत्व रखता है, क्योंकि यह पृथ्वी की देवी की पूजा के इर्द-गिर्द घूमता है। उत्सव के झूले खुशी लाते हैं और विशेष चावल केक व्यंजनों का आदान-प्रदान, जिसे पिथास के नाम से जाना जाता है, एक प्रथागत परंपरा है।

कपड़ाः

महिलाएं आमतौर पर काटकी, बोमकाई और संबलपुरी किस्मों सहित उल्लेखनीय विकल्पों के साथ साड़ी में खुद को पहनती हैं। संबलपुरी इकत साड़ी, अपने अनूठे स्वदेशी डिजाइनों के साथ, विशेष रूप से पर्यटकों द्वारा पोषित हैं। जबकि टाई और डाई तकनीक इंडोनेशिया से उधार ली गई है, नियोजित बुनाई प्रथाएं और तकनीक भारत के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अलग और अद्वितीय हैं। पुरुष पारंपरिक रूप से धोती-कुर्ता पहनावा पहनते हैं।

ओडिशा अपनी विभिन्न कला, संस्कृति और व्यंजनों आदि की विशिष्टता के लिए जाना जाता है। यदि कोई संस्कृति में गहराई से जाता है, तो वह निस्संदेह ओडिशा में कुछ दिन बिताने का विकल्प चुनेगा। ओडिशा के लोग सामाजिक कार्यक्रम की व्यवस्था जैसे "जात्रा", "नाटक" और क्षेत्रीय फिल्मों का निर्माण आदि करके परंपरा को फिर से जीवंत और अक्षुण्ण बनाए रखने की कोशिश करते रहते हैं। हाल ही में, एक ओडिया फिल्म नाम- "अनंत" (ANANTA) जारी की गई है, जिसमें कला और संस्कृति और एक निर्दोष युवक की उसके ग्रामीणों के जीवन के लिए बलिदान को दर्शाया गया है। फिल्म का निर्देशन श्री सब्यसाची महापात्र ने किया है और मुख्य भूमिका श्री सब्यसाची मिश्रा ने निभाई है, जिन्हें ओडिया फिल्म -हीरो कहा जाता है। यदि आप इस फिल्म को देखते हैं, तो आपको कुछ व्यावहारिक दृश्य मिलेंगे जो मैंने इस लेख में विस्तृत किया है।

•••

माँ

श्रीमती ममता
अतिथि रचनाकार

तू पास है या दूर, है मेरे लिए तू अनमोल
तेरा चेहरा, तेरी बातें, हर लम्हा याद है
साथ न होकर भी तू, हरदम मेरे पास है
न कभी घबराती थी, न कभी परेशान होती थी
हर कठिनाइयों को, चुपचाप सह जाती थी
हर रिश्ते में स्नेह बरसाती थी
माँ! तुम ये सब कैसे कर पाती थी
मेरी कमियों पर डांटना और तेरा रूठना
फिर खुद ही मान जाना और मुझे मनाना तेरा
लगता है जैसे तू फिर वापस आएगी
और मुझे रोता देख तू फिर डांट लगाएगी
माँ कैसे बताऊँ तू कितना याद आती है
तुम्हारी हाथों की लकीरों को देख सोचती थी मैं
तुम्हारी उम्र बहुत लम्बी है
पता नहीं कब, ये लकीरें छोटी पड़ गईं
और तुम चुपचाप, अनंत यात्रा को निकल गई
सब कहते हैं तुम बहुत भाग्यशाली थी
ब्रह्म मुहूर्त में सुहागन ही शिवत्व हो गई
तुमने हर व्रत हर पर्व को बड़ी शिद्दत से निभाया था
बताओ! जाते वक्त, इन सबसे कैसे छुटकारा पाया
तेरा चेहरा लिये घूमती हूँ मैं
सब कहते हैं मां मैं तुम जैसी दिखती हूँ
शायद यही जीवन है और यही जीवन का शाश्वत सत्य है
हर उदय के साथ अस्त है और यही आदि का अंत है
माँ तुम सचमुच अद्वितीय हो, अनोखी, अनमोल, अतुलनीय
तुम बिन ये जग है सूना
ईश्वरीय प्रतिमूर्ति, तुम हो अहर्निश वंदनीय
अहर्निश वंदनीय.....।

•••

सेवानिवृत्ति

क्रम सं.	नाम (श्री/ सुश्री/ श्रीमती)	पदनाम	सेवानिवृत्ति की तिथि
1.	जोआचिम बा	सहायक पर्यवेक्षक	30.04.2025
2.	डमरूधर मुंडा	वरिष्ठ लेखाकार	30.04.2025
3.	पितांबर दास-I	एमटीएस	30.04.2025
4.	पी. नारायण देहुरी	एमटीएस	30.04.2025
5.	देवानंद दास	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	31.05.2025
6.	के. वेंकट राव	सहायक लेखा अधिकारी	31.05.2025
7.	महेंद्र कुमार शतपथी	पर्यवेक्षक	31.05.2025
8.	रीना दास	पर्यवेक्षक	31.05.2025
9.	प्रभात कुमार साहु	पर्यवेक्षक	31.05.2025
10.	रमणी रंजन राय	स्टेनो ग्रेड-1	31.05.2025
11.	प्रकाश चंद्र परिडा	वरिष्ठ लेखाकार	31.05.2025
12.	राघव दिगल	वरिष्ठ लेखाकार	31.05.2025
13.	कुमा नायक	एमटीएस	31.05.2025
14.	सरोज कुमार बेहेरा	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	30.06.2025
15.	मनोरंजन पाणिग्राही	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	30.06.2025
16.	उमाकांत महासुआर	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	30.06.2025
17.	बिजय कुमार नायक-III	पर्यवेक्षक	30.06.2025
18.	लेबनोन एक्का	पर्यवेक्षक	30.06.2025
19.	ध्यान चंद्र मुर्मू	पर्यवेक्षक	30.06.2025
20.	दामोदर साहू	पर्यवेक्षक	30.06.2025
21.	चंद्र शेखर प्रधान	सहायक पर्यवेक्षक	30.06.2025
22.	कौशिक कुमार कावि	सहायक पर्यवेक्षक	30.06.2025
23.	बी. रमण मूर्ति	सहायक पर्यवेक्षक	30.06.2025
24.	पुष्पिता स्वाईं	वरिष्ठ लेखाकार	30.06.2025
25.	ध्रुव चरण प्रधान	वरिष्ठ लेखाकार	30.06.2025
26.	सोरजा कांत जेना	वरिष्ठ लेखाकार	30.06.2025
27.	कैलाश चंद्र पंडा	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	31.07.2025
28.	मोहम्मद अमानत	पर्यवेक्षक	31.07.2025
29.	प्रकाश सोरेंग	सहायक पर्यवेक्षक	31.07.2025
30.	पूर्ण चंद्र बस्के	सहायक पर्यवेक्षक	31.07.2025
31.	सुभाष चंद्र परिडा	सहायक पर्यवेक्षक	31.07.2025
32.	बीर कुशोर जेना	एमटीएस	31.07.2025
33.	मथुरा बेहेरा	एमटीएस	31.07.2025
34.	गुरुप्रसाद मुखर्जी	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	31.08.2025
35.	सुदर्शन साहू	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	31.08.2025
36.	प्रदीप कुमार सेठी	वरिष्ठ लेखा अधिकारी	31.08.2025
37.	रंकरतन स्वाईं	वरिष्ठ लेखाकार	31.08.2025
38.	राम चंद्र मुर्मू	एमटीएस	30.09.2025

"तोशाली" पत्रिका परिवार सभी सेवानिवृत्त सहकर्मियों के स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन की कामना करता है।

दिनांक : 09.07.2025 को कार्यालय परिसर में आयोजित वृक्षारोपण कार्यक्रम

दिनांक : 11.08.2025 को आयोजित प्रभागीय लेखाकार (परिवीक्षाधीन) के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम

दिनांक : 07.05.2025 से 10.06.2025 तक आयोजित सनस्ट्रॉक (लू) प्राथमिक चिकित्सा केंद्र

कार्यालय के अधिकारियों का सेवानिवृत्ति समारोह

"तोशाली" पत्रिका के 108वें अंक का विमोचन करते हुए अधिकारीगण

दिनांक : 26.05.2025 को नराकास (का.-1), भुवनेश्वर की 75 वीं अर्धवार्षिक बैठक की झलकियां

दिनांक : 20.06.2025 एवं दिनांक : 03.09.2025 आयोजित हिंदी कार्यशालाएं